A-PDF Image To PDF Demo. Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

प्रधान-सम्पादिका

श्रीमती यशोवती तिवारी

कुमारी हरदेवी मलकानी, एम० ए०, बी० टी०

सम्पादिका-समिति

रानी गिरिजादेवी (भदरी)

श्रीमती सत्यवती (स्नातिका), एम० एल० ए०

श्रीमती रत्नकुमारी, एम० ए०

श्रीमती कमला शिवपुरी, बी० ए०, बी० टी०, अलवर

कुमारी निर्मला गुप्ता, हिन्दी-प्रभाकर

प्रबन्ध-सम्पादक—श्रीनाथसिंह

पत्र-व्यवहार का पता

प्रेमलता देवी संचालिका "दीदी" इलाहाबाद

विषय सूची

अगस्त, सन १९४४

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इञ्च वृद्धि

६ महीने में एड़ी चुम्बी केश !

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है।
दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।
तीसरे सप्ताह में नए केश उगते दिखाई देते हैं।
चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इञ्च बढ़ जाते हैं।
फिर प्रति मास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का २।।) है जो एक महीने को काफ़ी होती है। डाक खर्च व पैकिङ्ग पृथक्। ३ शीशियों से अधिक डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिये ५) पेशगी भेजिए और अपने रेलवे स्टेशन का नाम लिखिये।

पता—'अलकपरी' नया कटरा, इलाहाबाद

भारतीय स्त्रियों और कन्याओं की सबसे अच्छी और सबसे सस्ती सचित्र मासिक पत्रिका

बिहार, बीकानेर, जोधपुर, कोटा, ग्वालियर, यू० पी० की सरकारों द्वारा कन्या-शालाओं के लिये स्वीकृत।

वर्ष } इलाहाबाद, अगस्त १९४४ { संख्या ८

गीत

लेखक, [illegible]ोध अदावाल एम० ए०, बी० टी०

मन्द गति से आ रहे हो।
शुष्क ज़र भूमि मन की,
लू व[illegible]ः श्वास तन की।
[illegible]-विरह की अग्नि का ज्वर;
तरल करुणा की छटा ले
प्रणय-घन बन छा रहे हो,
मन्द गति से आ रहे हो।

कटु-निराशा की अँधेरी,
घेरतीं बाधा घनेरी।
काँपता मन क्षीण जर्जर;
जुगनुओं में ज्योति-कण बन
पथ-दिशा दिखला रहे हो,
मन्द गति से आ रहे हो।

तरुण एकाकी हृदय का,
उठ न सकता भार भय का।
दूर अति प्रिय का बसेरा;
चन्द्र किरणों में विहँस कर
मिलन-बेला ला रहे हो,
मन्द गति से आ रहे हो।

गीत

लेखिका, कुमारी "शैल" रस्तोगी

मैं क्या गाऊँ।
यह हार भरी, मनुहार भरी,
चिर व्यथा किस तरह सहलाऊँ
मैं क्या गाऊँ।
मन धूमिल, धूमिल मेरा पथ।
जग स्वप्निल, आह थके युग-पग।
इस धूल भरे, सखि, शूल भरे,
पथ पर मैं कैसे मुस्काऊँ।
मैं क्या गाऊँ।
स्वर भी, स्वर भर भर, भर न सके।
आँसू-कण, झर झर, झर न सके,
यह चिर-खाली मेरी गागर,
कैसे सागर से भर लाऊँ?
मैं क्या गाऊँ।
मैं विवशित, मेरे गान थकित।
मैं कम्पित, मेरे प्राण व्यथित।
तम पर अम्बर झुक रहा मौन,
मैं तम पर कैसे झुक जाऊँ।
मैं क्या गाऊँ।

उन्माद

लेखक, श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह

उस दिन सन्ध्या-समय वायु सेवन के बाद मैं जल्दी घर लौट आया था। कमरे में पढ़ने में तल्लीन हो गया। कार्तिक मास की उस नीरव सन्ध्या में किसी अपरिचित के शब्द साफ सुनाई देने लगे।

'आदमी अपने को ही नहीं जान पाता। भगवान को क्या जान पायेगा? भगवान् को जान पाता तो वह क्या जानवरों की तरह बर्ताव करता? हाड़-मांस के शरीर पर इतना गर्व! हरे राम! हरे राम! हा! हा! हा! हा! हा! हा! हा! हा! हा!…………'

यह कौन बोल रहा है? आवाज तो किसी स्त्री की मालूम होती है। मैं आरामकुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ और सामने की खुली खिड़की के समीप जाकर मैंने झाँक कर देखा। लम्बी लम्बी घास और झाड़ियों के उस मैदान में एक स्त्री सफेद साड़ी पहने हुये स्थिर खड़ी थी। मैदान के उस प्रगाढ़ अन्धकार में भी यह देख लेना कठिन न था। मेरी एकाग्रता भङ्ग करने वाले शब्द इसी स्त्री के मुख से निकल रहे थे। शब्दों का प्रवाह अभी रुका न था—

'वह कहाँ नहीं है? आसमान में, जमीन पर, सूरज में, चाँद में, तारों में, पेड़ों में, फूलों में, नदी में, तालाब में, कुएँ में, सभी जगह तो वह है! फिर वह खोजने से मिलता क्यों नहीं? नहीं, मिलेगा? नहीं मिलेगा—मिलेगा—मिलेगा! 'अपने पिया की मैं जोगिन बनूँगी!' जोगिन बनूँगी………हा! हा! हा! जोगिन बनूँगी……हा! हा! हा! हा! जोगिन बनूँगी, मैं जो गिन……हा! हा!…!'

'नीचे कौन खड़ा है रे?' यह मेरे नौकर जोखू की आवाज थी।

वह एकाएक चुप हो गई।

'चुड़ैल है क्या रे?'

'चुड़ैल ऐसी ही होती है? वाह! आदमी नहीं पहचानते? कैसे पहचानोगे भाई! कोई पहचान पाता है कि तुम्हीं पहचानोगे!'

'यहाँ से जाती क्यों नहीं? क्यों खड़ी शोर कर रही है?'

'खड़ी हूँ तुम से मतलब? जहाँ चाहूँगी खड़ी रहूँगी, जहाँ चाहूँगी घूमूँगी। अब किसी से कोई मतलब नहीं। किसी की चेरी नहीं हूँ, गुलाम नहीं हूँ!'

'हट नहीं तो पानी छोड़ता हूँ!'

'पानी छोड़ोगे? हा! हा! हा! हा! छोड़ दो, दो चार, दस-बीस घड़े छोड़ दो! कई दिन से नहाया भी नहीं। नहा लूँगी!'

'अच्छा ठहर!'

जोखू अब सीमा के पार हो चुका था। अप[illegible]मरे से निकल कर मैं तुरन्त उस कमरे में जा पहुँचा [illegible]ाँ वह था। मैंने कहा—जोखू।

'क्या है, भैया?'

'पागल को छेड़ना अच्छा नहीं होता।'

'उसके शोर से आपके पढ़ने में हर्ज [illegible]हा था। इसीलिये मैंने……।'

'यह तो ठीक है। लेकिन पानी छोड़ने की धमकी से क्या वह हट सकती है?'

'भैया, मैंने तो……ऐसे ही कहा था!'

'अच्छा आओ, चल कर देखें, वह कौ[illegible]'

'आप यहीं रहिये। मैं जाकर देखता हूँ।'

'पागल के पास जाना……!'

'चुप-चाप चले आओ। ज्यादा बक-बक न करो।'

जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से उतर कर मैंने [illegible]रवाजा खोला। लालटेन लिये हुये जोखू मेरे पीछे था। लालटेन के प्रकाश में उस स्त्री को देख कर मैं दङ्ग रह गया। गोरे रङ्ग के उसके उस शरीर में सौंदर्य मानो छलका पड़ता था! नख से शिख तक प्रत्येक अङ्ग की रचना में अद्वितीय कलाकार ने मानो अपने कला-कौशल का अन्त कर दिया था। और उस सर्वाङ्ग-सुन्दर शरीर में भरी थी जीवन की वह स्फूर्ति जिसके समुचित सञ्चालन की योग्यता उसमें न थी! वह पगली ऐसी ही थी। चकित दृष्टि से उसकी ओर देखते हुये मैं मन्त्र-मुग्ध सा खड़ा रह गया। प्रश्नों की जो बाढ़ अन्दर उठ रही थी वह सहसा दब गई। एक

बार हम दोनों की ओर देख कर ठहा मार कर वह घास पर चलने लगी।

'उधर घास पर न जाइये। साँप-बिच्छू यहाँ भरे पड़े हैं।'—सावधान होकर मैंने जोर से कहा।

'अच्छा है, डस लेगा, मर जाऊँगी। इस जिन्दगी से पिंड तो छूट जायगा! रेल से कूदी तब नहीं मरी, पहाड़ से गिरी तब नहीं मरी, गंगा में डूबी तब नहीं मरी, बीमार पड़ी तब नहीं मरी! अभी क्या मरूँगी? जितना बदा है, उतना तो भोगना ही पड़ेगा! फिर मुझे कोई मार भी तो नहीं सकता! कौन मारेगा? आग मारेगी? जल ारेगा? हवा मारेगी? अच्छा, रहने दो। भाई रहने ·········।'

बहुत दूर निकल गई। इसलिये मैं आगे कुछ सुन का। लेकिन जितना देख-सुन चुका था, उतना क्या था? चेतना के साथ उन्माद का वह विकट खेल! ा तो पहले मैंने कभी देखा-सुना न था। विचारों स तूफ़ान में हिलोरें लेता हुआ देर तक मैं मूर्तिवत् ड़ा रह गया। तब जोखू ने सहमी हुई आवाज —भैया अब अन्दर चलिये। इस तरह ओस में खड़ रहना ठीक नहीं है।

'अच्छा तुम जाओ, अपना काम करो। लालटेन यहीं रहने ं अभी आता हूँ।'

जोखू गया। मैं वहीं दरवाजे की चौखट पर बैठा उस अ ने लगा जिधर वह गई थी।

'बाबू सा!'

चौंक कर मैंने देखा, साफ-सुथरे कपड़े पहने, लोई ओढ़े, एक सज्जन मेरे बगल में खड़े थे।

'इधर कोई गल स्त्री आई है, साहब?'

'हाँ, आई तो थी। उधर सामने चली गई है।'

'कितनी देर हुई?'

'शायद आधा घण्टा हुआ होगा।'

'तब तो अब वह न जाने कहाँ पहुँच गई होगी। हाय रे भाग्य! यह औरत मुझे भी पागल बना कर छोड़ेगी!'

इतनी देर से दबा हुआ कौतूहल फिर जोर पकड़ गया। मैंने विनीत स्वर में कहा—अगर आप अनुचित न समझें तो उसका हाल मुझे भी बताने की कृपा करें। बड़ी देर से मैं सोच रहा हूँ कि वह कौन है।

'देर तो हो जायगी। खैर कोई हर्ज नहीं। सारी रात उसे ढूँढ़ने का इरादा करके निकला हूँ।'

'तो फिर अन्दर चलिये।'

अपने कमरे में पहुँच कर एक आराम-कुर्सी की ओर संकेत करके मैंने उनसे बैठने को कहा। एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर वे बैठ गये। मैंने पूछा—यह क्या आपकी कोई रिश्तेदार है?

'नहीं साहब, रिश्तेदार तो नहीं है······।' उस व्यक्ति के चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई।

'तो फिर वह कौन है?'

'वह एक ब्राह्मण की लड़की है। माता के अतिरिक्त और कोई नहीं था। मा-बेटी मेरे पड़ोस में रहती थीं। माता दूसरों के घर खाना पका कर कूट-पीस कर किसी तरह काम चलाती थी। वे दोनों मेरे घर में बराबर आया-जाया करती थीं। लक्ष्मी के साथ लड़कपन में मैं खेला-कूदा करता था। वह कैसी सुन्दर है, यह तो आपने देखा होगा। जब वह जवान हुई तब मुहल्ले के बाँके-तिरछे जवानों का आवाजें कसते या ठुमरियाँ और गजलें अलापते हुये उसके दरवाजे के सामने से आना-जाना शुरू हुआ। यह सब देख कर मुझे बड़ा दुःख होता था। दो-चार बार मैंने लक्ष्मी और उसकी मा को समझाने की कोशिश की, लेकिन नतीजा उलटा हुआ। वे दोनों मुझसे रूठ गईं। तब हार कर मैं चुप हो गया।

'त्रिभुवननाथ मेरा एक सहपाठी और मित्र था। एक बार मेरे साथ वह लक्ष्मी के घर गया। तब से वह उसके यहाँ बराबर आने-जाने लगा। उन दोनों में गुप्त रूप से प्रेम हो गया था। इस प्रेम का हाल जब लक्ष्मी की माता को मालूम हुआ तब उसने बड़ी धमाचौकड़ी मचाई। लक्ष्मी के घर त्रिभुवननाथ का आना-जाना बन्द हो गया। अब त्रिभुवन हर समय उदास रहने लगा। इधर लक्ष्मी की मा को बेटी के विवाह की चिन्ता सताने लगी। बात-चीत शुरू हुई। कुछ दिनों के बाद प्रतापगढ़ जिले के एक गाँव में लक्ष्मी की शादी तय हो गई। सुनने में आया कि वर अधेड़ है और उसने लक्ष्मी की मा को धन से भी सहायता की है। जब बारात दरवाजे पर आई तब मैं भी देखने गया। वर को देख कर मुझे रुलाई आ गई। उसके सिर के बाल और मूँछें खिजाब से रँगी हुई थीं, चेहरा झुर्रियों से भरा था। उसकी उम्र ६० से किसी तरह कम न थी। विवाह हो गया। लक्ष्मी ससुराल चली गयी।

'विवाह हो जाने के छः मास बाद मैंने एक दिन सुना

भारतीय स्त्रियों और कन्याओं की सबसे अच्छी और सबसे सस्ती सचित्र मासिक पत्रिका

बिहार, बीकानेर, जोधपुर, कोटा, ग्वालियर, यू॰ पी॰ की सरकारों द्वारा कन्या-शालाओं के लिये स्वीकृत।

वर्ष } इलाहाबाद, अगस्त १९४४ { संख्या ८

गीत

लेखक, [illegible]ोध अग्रवाल एम॰ ए॰, बी॰ टी॰

मन्द गति से आ रहे हो।
शुष्क [illegible]जर भूमि मन की,
लू व[illegible]ःश्वास तन की।
[illegible]-विरह की अग्नि का ज्वर;
[illegible] तरल करुणा की छटा ले
प्रणय-घन बन छा रहे हो,
मन्द गति से आ रहे हो।

कटु-निराशा की अँधेरी,
घेरतीं बाधा घनेरी।
काँपता मन क्षीण जर्जर;
जुगनुओं में ज्योति-कण बन
पथ-दिशा दिखला रहे हो,
मन्द गति से आ रहे हो।

तरुण एकाकी हृदय का,
उठ न सकता भार भय का।
दूर अति प्रिय का बसेरा;
चन्द्र किरणों में विहँस कर
मिलन-वेला ला रहे हो,
मन्द गति से आ रहे हो।

गीत

लेखिका, कुमारी "शैल" रस्तोगी

मैं क्या गाऊँ।
यह हार भरी, मनुहार भरी,
चिर व्यथा किस तरह सहलाऊँ
मैं क्या गाऊँ।
मन धूमिल, धूमिल मेरा पथ।
जग स्वप्निल, आह थके युग-पग।
इस धूल भरे, सखि, शूल भरे,
पथ पर मैं कैसे मुस्काऊँ।
मैं क्या गाऊँ।
स्वर भी, स्वर भर भर, भर न सके।
आँसू-कण, झर झर, झर न सके,
यह चिर-खाली मेरी गागर,
कैसे सागर से भर लाऊँ ?
मैं क्या गाऊँ।
मैं विवशित, मेरे गान थकित।
मैं कम्पित, मेरे प्राण व्यथित।
तम पर अम्बर झुक रहा मौन,
मैं तम पर कैसे झुक जाऊँ।
मैं क्या गाऊँ।

कि लक्ष्मी किसी जमींदार के छोटे भाई के साथ भाग गई है। उसकी माँ ने रो रो कर मुझसे सारा हाल कहा। यह हाल सुन कर मैंने उसे खूब खरी खोटी सुनाई, फिर सान्त्वना भी दी। त्रिभुवन ने भी सब सुना। उसके दुःख का वारापार न था।

'ससुराल से भागने के दो मास बाद एक दिन त्रिभुवननाथ को लक्ष्मी का एक पत्र मिला। त्रिभुवन ने वह पत्र मुझे भी दिखाया। पत्र में लिखा था—'प्यारे, भाड़ से निकल कर भट्ठी में झोंकने की मसल तुम अक्सर सुनाया करते थे। वह मसल मेरे जीवन ने साबित कर दी है। उस बूढ़े खूसट के घर से निकल कर मैंने समझा था कि मुझे सुख का साम्राज्य मिल जायगा, लेकिन हुआ उसका बिलकुल उलटा। एक मुसीबत से निकल कर, मैं एक दूसरी मुसीबत में फँस गई। जिसके साथ भाग कर मैं यहाँ आई थी वह धोखेबाज निकला। चार रोज हुये सब रुपया-पैसा लेकर रफूचक्कर हो गया। एक मित्र से मिलने का बहाना करके घर से गया था, लेकिन लौट कर अभी तक नहीं आया। अगर वह वापस आये भी तो मैं अब उसकी सूरत भी नहीं देखूँगी। यहाँ पड़ोस के एक भले आदमी के घर में पड़ी हुई हूँ। लेकिन इस तरह कितने दिन काट सकूँगी। अब मेरी इज्जत तुम्हारे ही हाथ है। जी चाहे पार लगाओ, न जी चाहे डूब जाने दो। पिछली बातें भूल जाओ। तुम्हारी तरफ से मेरा भाव कभी नहीं बदला। मैं क्या करती, बेबस थी। सारा कसूर मेरी माता का है। उस कलमुँहा ने मेरा सर्वस्व नष्ट कर दिया। मैं कहीं की न रही। अब बताओ, क्या करूँ? मेरा उद्धार करोगे या नहीं? अगर उबारना चाहते हो, यह पत्र देखते ही यहाँ आ कर मुझे ले जाओ। नहीं तो संसार में मुझे फिर कहीं न पाओगे? तुम्हारी बाट हर घड़ी जोह रही हूँ।—तुम्हारी लक्ष्मी।'

पत्र देख कर मुझे बड़ा खेद हुआ। त्रिभुवन को मैंने सलाह दी कि वह तुरन्त दिल्ली जाकर उसे लिवा लावे। त्रिभुवन के पास रुपये न थे। खर्च देकर मैंने उसे दिल्ली रवाना कर दिया।

'चार दिन के बाद लक्ष्मी को लेकर त्रिभुवननाथ वापस आया। मेरे एक खाली मकान में लक्ष्मी ठहराई गई। लक्ष्मी की मा को खबर दी गई। बेटी को गले लगा कर वह खूब रोई-गाई। अब दूसरी समस्या उपस्थित हुई। अगर लक्ष्मी के शौहर को खबर लग गई तो क्या होगा? सब फँस जायँगे—वह अवश्य मुकद्दमा चलावेगा। तब क्या किया जाय? ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। लक्ष्मी के वापस आने की खबर धीरे धीरे मुहल्ले में फैलने लगी। तब दो सौ रुपये दे कर लक्ष्मी, उसकी माता और त्रिभुवन को मैंने बाहर भेज दिया।

'एक मास के बाद मेरे पास कलकत्ता से त्रिभुवन का एक पत्र आया। उसमें उसने लिखा कि वह एक नाटक-कम्पनी में नौकर हो गया है। वेतन १५०) मासिक मिलता है। उन लोगों के दिन अब सुख से बीत रहे हैं। लक्ष्मी बहुत प्रसन्न रहती है और उसकी माता को भी कोई शिकायत नहीं है। पत्र पढ़ कर मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ।

'लेकिन मुसीबत कभी अकेली नहीं आती। स[illegible] कदापि स्थायी नहीं होता! चार मास के बाद एक दिन [illegible] के समय मैं अपने कमरे में लेटा हुआ आराम कर र[illegible]। दिन भर दफ़्तर में काम करने के कारण तबीयत [illegible] सुस्त हो गई थी। मैं अपने विचारों में व्यस्त था। [illegible] कमरे में लक्ष्मी की माता ने प्रवेश किया। मैं आश्च[illegible] अवाक् रह गया। मेरे पलँग के पास बैठ कर वह फू[illegible]कर रोने लगी। 'रोओ न, चाची। बताओ क्या बात[illegible] तुम यहाँ कैसे आ गईं?' चित्त सँभालकर, आँसू पोंछे, उसने कहा—'कुछ न पूछो, बेटा। त्रिभुवननाथ ब[illegible]धोखेबाज निकला। वह विवाहित पुरुष है। पहले वह यह बात हम लोगों से छिपाता रहा। आखिर [illegible]न लक्ष्मी से लड़ गया और हम लोगों को घर से [illegible]। हम दोनों एक धर्मशाले में जा कर ठहर [illegible] लक्ष्मी की दशा बिगड़ने लगी। दिन दिन भर वह मन मारे पड़ी रहती। उसे बुखार आने लगा। एक दिन रात के समय एकाएक उठ कर वह आँय बाँय बकने ल[illegible]। दूसरे दिन भी उसकी हालत नहीं सुधरी। उसका दिमाग खराब हो गया। दो-तीन भले आदमियों ने दया करके हमें टिकट खरीद दिये। तब उसे लेकर मैं सीधी यहाँ चली आई।'

ढारस देते हुए मैंने कहा—क्या करोगी, चाची? जो कुछ ऊपर बीते उसे झेलना ही पड़ता है! लक्ष्मी कहाँ है? 'नीचे बैठी है। बेटा, जरा चलो, देख लो।' उसके साथ नीचे जाकर मैंने देखा, दीवार की ओर एकटक देखती हुई लक्ष्मी फर्श पर बैठी हुई है। बाल बिखरे हुये थे, मुँह सूख गया था। साड़ी इधर-उधर फट गई थी। उसे देखकर मेरी आँखों में आँसू छलक आये। 'लक्ष्मी!' वह जैसी की तैसी बैठी रही। उसकी स्मृति नष्ट हो चुकी थी। उसका शरीर

तो संसार में अवश्य था, किन्तु वह उसके झगड़ों से बहुत दूर थी।'

इतना कह कर, एक ठंडी साँस खींच कर, बाबू साहब स्तब्ध हो गये। मैंने उनके विचारों में विघ्न डालना उचित नहीं समझा। दो मिनट चुप बैठे रह कर वे फिर कहने लगे—आगे का हाल ज्यादा नहीं है, लेकिन आप सब सुन लीजिये। उन दोनों को मैंने अपने एक खाली घर में ठहरा दिया। सारा खर्च मैं देता था। लक्ष्मी की मा बेटी की सेवा-शुश्रुश्रा में दिन-रात लगी रहती थी। धीरे धीरे उसकी तबीयत भी खराब होने लगी। एक तो वृद्धावस्था, दूसरे यह घोर विपत्ति! एक हफ्ते की बीमारी के बाद वह भी चल बसी। मरते समय लक्ष्मी को वह मुझे सौंप गई। एक [illegible]लण से मैंने उसका क्रिया-कर्म करा दिया। लक्ष्मी की से[illegible]े लिये एक दासी रख दी। वह दासी थोड़ी देर के लिये [illegible]हीं चली गई। मौका पाकर लक्ष्मी घर से निकल पड़ी [illegible] मैं दफ्तर से घर आया तब मुझे यह बात मालूम हुई। [illegible]एटे से उसकी तलाश में मैं इधर-उधर भटक रहा हूँ। [illegible]ँ, जो कुछ भाग्य में लिखा है चुप-चाप झेल रहा हूँ [illegible]

लक्ष्म[illegible] की करुण-कथा सुन कर मेरा हृदय वेदना से भर गया। [illegible] कैसी विडम्बना है! ऐसा रूप-रङ्ग और यह गति! क[illegible]ण चुप-चाप बैठे रह कर, बाबू साहब के चेहरे की ओर [illegible] हुये, साहस करके मैंने कहा—क्यों साहब, आप इसे [illegible] पागलखाने में क्यों नहीं भेज देते?

[illegible]हब, मैं उसे किसी पागलखाने में नहीं भेज सकता। [illegible]वह जिन्दा नहीं रह सकती! और मैं यह नहीं चाहता कि [illegible]र जाय!'

मैं कट[illegible]! वह अनुचित प्रस्ताव करने के लिये मुझे बड़ा खेद हुआ।

एक क्षण [illegible]न रह कर उन महाशय ने कहा आपको ताज्जुब है कि मै[illegible]तनी जहमत अपने सिर पर क्यों लिये हुये हूँ? आपका ताज्जुब करना दुरुस्त है। लेकिन बाबू मैं अपने दिल से मजबूर हूँ! अगर दिल दिल है तो उसमें दर्द पैदा होना लाजिम है!

उस व्यक्ति के हृदय का भेद जान कर मेरे दिल में उसके प्रति श्रद्धा और सहानुभूति उमड़ने लगी।

'आपके विचार बहुत ऊँचे हैं! आपकी जितनी तारीफ की जाय थोड़ी है! आपका शुभ नाम क्या है, महाशय?'

'मेरा नाम जङ्गबहादुर है। आपसे मिल कर, मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं यहीं करीब में ही रहता हूँ! उम्मीद है कि आपसे कभी कभी मुलाकात जरूर होगी। अच्छा अब इजाज़त दीजिये। अभी न जाने किस किस गली-कूचे की खाक छाननी पड़ेगी! खैर, देखा जायगा। अब तो मैं हूँ, लक्ष्मी है, और यह अँधेरी रात है! अच्छा, नमस्कार!'

नमस्कार! चलिये मैं भी थोड़ी दूर तक आपके साथ चलूँगा।'

'आप क्यों तकलीफ करेंगे?'

'नहीं, मुझे इस वक्त फ़ुरसत है। तकलीफ की इसमें क्या बात है?'

'अच्छा चलिये।'

लालटेन लेकर मैं मुंशी जङ्गबहादुर के साथ हो लिया।

घर से निकल कर हम दोनों उस ओर चले जिधर लक्ष्मी अदृश्य हो गई थी। लालटेन लिये हुये मैं आगे था और मुंशी जङ्गबहादुर मेरे पीछे थे। लम्बी लम्बी घास से भरे हुये मैदान में एक पगडंडी पर हम लोग चले जा रहे थे। रोशनी इधर-उधर फेंक कर हम दोनों उसे ढूँढ़ने लगे; किन्तु उसका कहीं पता न था।

'उसका यहाँ मिलना मुश्किल है साहब। अब तक वह बहुत दूर निकल गई होगी?' जङ्गबहादुर ने सिर हिलाते हुये कहा।

'पागल स्त्री का क्या ठिकाना है? मुमकिन है, कहीं यहीं हो? इसलिये हर जगह देखते चलना ही ठीक होगा।'

'आप ठीक कहते हैं। हर जगह देखते चलना ही मुनासिब है।'

हम आगे बढ़े। कुछ दूर आगे जाने के बाद एक झाड़ी के समीप कोई सफेद चीज दिखाई दी। उस ओर रोशनी फेंक कर मैं ध्यान से देखने लगा।

'उस तरफ देखिये, वही है क्या?'

'मालूम तो वही होती है। चलिये देखें।'

तब हम लोग मुड़ कर उस ओर चले। झाड़ी के समीप पहुँच कर हमने देखा कि लक्ष्मी एक कदम्ब के वृक्ष से लिपटी हुई खड़ी है, मानो कोई प्रेमिका अपने प्रेमी के गले से मिल रही हो। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। स्वप्न के जिस दिव्य लोक में वह उस समय विचरण कर रही थी वहाँ पहुँचने की क्षमता हम होशहवासवाले लोगों में न थी!

'लक्ष्मी!'

चेतना की एक क्षीण-रेखा लक्ष्मी के अरुण मुखमण्डल

पर झिलमलाने लगी ! वृद्ध को छोड़ कर, अलग हट कर, वह खड़ी हो गई।

'यहाँ क्या कर रही हो, लक्ष्मी ?'

वह चुप-चाप खड़ी रही।

'तू घर छोड़ कर क्यों चली आई, लक्ष्मी ?'

'घर ? किसका घर, कहाँ का घर ? मेरा घर तो हर जगह है ! अब मैं धोखे में नहीं आ सकती—धोखे में नहीं आ सकती ! हा-हा हा-हा !' उस नीरव वायु मण्डल में उसका विकट अट्टहास गूँज उठा।

लक्ष्मी का हाथ पकड़ कर जङ्गबहादुर ने कहा—मेरे साथ नहीं चलेगी लक्ष्मी ?

'तुम्हारे साथ ? हाँ, चलूँगी, चलूँगी, चलूँगी, चलूँगी ! दिल्ली, कलकत्ता, जङ्गल, पहाड़ जहाँ कहो तुम्हारे साथ चलूँ। लेकिन देखो, धोखा न देना ! तुम भी धोखेबाज मालूम होते हो ! धोखेबाज, धोखेबाज, धोखेबाज ! हा-हा हा-हा !'

तब उसे लेकर हम लोग लौटे। अपने घर के सामने जङ्गबहादुर साहब से विदा लेकर, अपने कमरे में जाकर, मैं पलङ्ग पर गिर पड़ा। उस समय मेरे मस्तिष्क में विचारों का तूफान उठा हुआ था। दिल में मीठा-मीठा-सा दर्द हो रहा था ! क्यों ? खैर, जाने दो वह बात !

गीत*

लेखक, श्री स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी, बी० ए०

आज पीड़ा जान पाया।

आज मैंने साधना कर अश्रु का वरदान पाया।
जब कि तारे मिट गये हैं, क्षीण दीपक बुझ चला है।
और प्रिय के आगमन का वह सुखद क्षण भी टला है।
तब चकित उर पूछता है 'क्या उन्हें पहिचान पाया ?'
चिर प्रतीक्षा की घड़ी जब बेबसी में खो गई हो।
और निशि इस धरणि पर दो चार मोती बो गई हो।
और उर के ज्वार ने जब नयन में स्थान पाया ॥
सत्य या भ्रम क्या कहूँ जब छवि क्षितिज पर डोलती हो।
और उनकी मधुर स्मृति जब कि मधु-रस घोलती हो।
हाँ, कि अपनी वेदना में—आज प्रिय का ज्ञान पाया ॥
आज पीड़ा जान पाया ॥

* गत दिसम्बर के अङ्क में श्रीमती 'कनक' जी की रचना 'कौन पीड़ा जान पाया' 'दीदी' में प्रकाशित हुई थी। उसीसे प्रेरित होकर यह रचना प्रस्तुत हुई।

नई किताबें

स्वर्गीय हेमचन्द्र—लेखक, श्री यशपाल जैन। प्रकाशक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीराबाग, बम्बई ४ मूल्य चार आँसू।

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय (बम्बई) के संस्थापक श्री नाथूराम प्रेमी से हिन्दी के पाठक परिचित हैं। स्वर्गीय हेमचन्द्र उन्हीं के सुयोग्य पुत्र थे। होना यह चाहिये था कि वे प्रेमी जी की इस दूकान का भार सँभालते और वृ[illegible] पिता के शेष दिन विश्राम में व्यतीत होते। परन्तु ईश्व[illegible] यह मंजूर न था। उसने हेमचन्द्र को उठा कर प्रेमी [illegible] अँधेरे में भटकने के लिये छोड़ दिया है। निश्चय [illegible] हूँ। प्रेमी जी के दुःख का ठिकाना नहीं है। प्रस्तु[illegible] उन्हीं स्वर्गीय युवक हेमचन्द्र के संस्मरण संग्रहीत [illegible] ला का ध्यान इस लोक से हटा कर अन्यत्र ले ज[illegible] नाते प्रेमी जी का भी दुःख कम करते होंगे [illegible] ारपुर के सकलन का श्रेय श्री यशपाल जैन [illegible] १०—२५ भूमिका पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लि[illegible] कि शीघ्र ही अमर साहित्य का रूप दे दिया है। [illegible] न्तु अभी तक

प्रेमोपहार (कविता संग्रह)—ले[illegible] श्री खुशीराम शर्मा वाशिष्ठ विशारद प्रेम [illegible] ई, तो मुझे तक) मूल्य ।≋)। सभी कविताएँ सरस अ[illegible] न दिन तक एक उदाहरण लीजिये—

लौट गये हैं पथ के सा[illegible]
नीरव है सारा संस[illegible]
प्रियतम नहीं अभी तक [illegible]
हा कैसा निष्ठुर [illegible] र।

कतरन (गद्य गीत)—[illegible] श्री सुबोध कुमार अग्रवाल मूल्य ।=) पता—चूरू [illegible] गोष्ठी चूरू।

प्रायः सभी गद्य गीत गम्भीर चिन्तन का द्वार खोलने से प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

छोटे से जलते हुये मिट्टी के दीपक ने पूछा—'रात्रि मैं किस प्रकार तुम्हें धन्यवाद दूँ ?'

रात्रि ने उत्तर दिया—'अपनी निष्पक्ष मौन लोक सेवा से।'

राजस्थानी-काव्य में राणा प्रताप

लेखिका, रानी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत, रावतसर

महाराणा प्रताप ने जीवन-पर्यन्त सम्राट अकबर से युद्ध किया और स्वतन्त्रता की रक्षा की। उसके शौर्य, साहस और स्वतन्त्र-प्रियता की प्रशंसा में राजस्थानी साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है। उसके ये कुछ नमूने श्रीमती रानी साहबा ने 'दीदी' की पाठिकाओं के लिये एकत्र किये हैं।

सह गावड़िया साथ, एकण बाड़ै बाड़िया।
राण न मानी नाथ, तान्डे सांड प्रतापसी॥

अकबर ने इन गायों रूपी सारे राजाओं को एक बाड़े में बन्द कर दिया। परन्तु यह सांड रूपी प्रताप सिंह उसकी नाथ में नहीं आता, यानी ताबे नहीं आता है।

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा॥

स्वयं चला जायगा, और यह दिल्ली भी किसी दूसरे ज़े में होगी, जैसा कि संसार का नियम है। परन्तु ा प्रताप, तैने जो कार्य कर दिखाया है उसका न जावेगा।

हिन्दू लाज, सगपण रोपे तुरक सूँ।
रज कुल री आज, पूँजी राण परतापसी॥

कन्याओं को इन मुगलों को देकर अपनी है, आज प्रताप ही आर्य जाति की पूँजी

स्याल समाज, हिन्दु अकबर बस हुआ।
रो मृग राज, पजै न राण परताप सी॥

सुख औ नन्द उपभोग के लिये ये हिन्दू राजा गीदड़ों की भाँति वर के वश हो गये। परन्तु प्रताप एक क्रोधी सिंह की भाँ उसके पंजे में नहीं आता है।

थिर नृप नदुसथान, लातर गया मग लोभ लग।
माता भू मे मान, पूजै राण प्रताप सी॥

हिन्दुस्तान के राजा लोग अपने कर्तव्य पथ से हट गये हैं। केवल एक प्रताप अपने देश को माता मान कर उसकी पूजा करता है।

गोहिल कुल धन गाट, लेवण अकबर लालची।
कौडी देनह काढ़, पण धर राण परतापसी॥

गुहिलोत वंश के यश रूपी धनराशि को लेने के लिये लालची अकबर प्रयत्न करता है परन्तु प्रतिज्ञा को रखने वाला प्रताप एक कौड़ी तक तो निकाल के देता नहीं।

भागै सागे भाम, अमरत लागे ऊमरा।
अकबर तुल आराम, पैखे जहर परताप सी॥

अपनी पत्नी के साथ जङ्गलों में भटकते फिरते हैं। उन्हें वन के फल फूल अमृत के समान लगते हैं। परन्तु अकबर की आधीनता में आराम भी विष के समान कष्ट कर प्रतीत होता है।

माथे मैं गल खाग तैं बाही परताप सी।
बांट किया बे भाग, गोटी साबु तांत गत॥

राणा प्रताप ने हाथी के सिर पर खड्ग मारा, उसके दो टुकड़े इस आसानी से कर दिये जैसे तांत से साबुन की टिकिया कट जाती है।

बाही राण परताप सी, बख्तर में बरछी।
जाणक झिंगर जाल में, मुँह काढे मच्छी॥

प्रताप ने ऐसी बर्छी मारी कि लोह के कवच को चीर कर दूसरी ओर निकल आई। ऐसी दिखाई देती थी मानों जाल में से झिंगुर मच्छी ने मुँह निकाला हो!

गिरपुर देस गमाड़, भम्यां पग पग भाखरां।
मह अंजसै मेवाड़, सह अंजसै सिसोदिया॥

पर्वतों, नगरों और देश को खोकर प्रताप विकट पहाड़ों में पैदल भटकते फिरे। उनके इन्हीं कृत्यों पर तो मेवाड़ की भूमि गौरव करती है और उनके वंशज सिसोदिया कौम को नाज है।

ग्राहकों को सूचना— दीदी हर महीने की पहली तारीख को निकल जाती है। यदि किसी महीने की दीदी आपको पहले ही हफ्ते में न मिले तो समझिये कि गुम हो गई। उस दशा में तुरन्त डाकघर से पूछताछ कीजिये और हमें भी सूचित कीजिये।

पर झिलमलाने लगी ! वृक्ष को छोड़ कर, अलग हट कर, वह खड़ी हो गई।

'यहाँ क्या कर रही हो, लक्ष्मी ?'

वह चुप-चाप खड़ी रही।

'तू घर छोड़ कर क्यों चली आई, लक्ष्मी ?'

'घर ? किसका घर, कहाँ का घर ? मेरा घर तो हर जगह है ! अब मैं धोखे में नहीं आ सकती—धोखे में नहीं आ सकती ! हा-हा हा-हा !' उस नीरव वायु मण्डल में उसका विकट अट्टहास गूँज उठा।

लक्ष्मी का हाथ पकड़ कर जङ्गबहादुर ने कहा—मेरे साथ नहीं चलेगी लक्ष्मी ?

'तुम्हारे साथ ! हाँ, चलूँगी, चलूँगी, चलूँगी, चलूँगी ! दिल्ली, कलकत्ता, जङ्गल, पहाड़ जहाँ कहो तुम्हारे साथ चलूँ। लेकिन देखो, धोखा न देना ! तुम भी धोखेबाज मालूम होते हो ! धोखेबाज, धोखेबाज, धोखे-बाज ! हा-हा हा-हा !'

तब उसे लेकर हम लोग लौटे। अपने घर के सामने जङ्गबहादुर साहब से विदा लेकर, अपने कमरे में जाकर, मैं पलङ्ग पर गिर पड़ा। उस समय मेरे मस्तिष्क में विचारों का तूफान उठा हुआ था। दिल में मीठा-मीठा-सा दर्द हो रहा था ! क्यों ? खैर, जाने दो वह बात !

गीत*

लेखक, श्री स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी, बी० ए०

आज पीड़ा जान पाया।

आज मैंने साधना कर अश्रु का वरदान पाया।
जब कि तारे मिट गये हैं, क्षीण दीपक बुझ चला है।
और प्रिय के आगमन का वह सुखद क्षण भी टला है।
तब चकित उर पूछता है 'क्या उन्हें पहिचान पाया ?'
चिर प्रतीक्षा की घड़ी जब बेबसी में खो गई हो।
और निशि इस धरणि पर दो चार मोती बो गई हो।
और उर के ज्वार ने जब नयन में स्थान पाया॥
सत्य या भ्रम क्या कहूँ जब छवि क्षितिज पर डोलती हो।
और उनकी मधुर स्मृति जब कि मधु-रस घोलती हो।
हाँ, कि अपनी वेदना में—आज प्रिय का ज्ञान पाया॥
आज पीड़ा जान पाया॥

---

* गत दिसम्बर के अङ्क में श्रीमती 'कनक' जी की रचना 'कौन पीड़ा जान पाया' 'दीदी' में प्रकाशित हुई थी। उसीसे प्रेरित होकर यह रचना प्रस्तुत हुई।

स्वर्गीय हेमचन्द्र—लेखक, श्री यशपाल जैन। प्रकाशक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीराबाग, बम्बई ४ मूल्य चार आँसू।

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय (बम्बई) के संस्थापक श्री नाथूराम प्रेमी से हिन्दी के पाठक परिचित हैं। स्वर्गीय हेमचन्द्र उन्हीं के सुयोग्य पुत्र थे। होना यह चाहिये था कि वे प्रेमी जी की इस दूकान का भार सँभालते और वृद्ध पिता के शेष दिन विश्राम में व्यतीत होते। परन्तु ईश्वर यह मंजूर न था। उसने हेमचन्द्र को उठा कर प्रेमी अँधेरे में भटकने के लिये छोड़ दिया है। निश्चय प्रेमी जी के दुःख का ठिकाना नहीं है। प्रस्तु उन्हीं स्वर्गीय युवक हेमचन्द्र के संस्मरण संग्रही का ध्यान इस लोक से हटा कर अन्यत्र ले ज नाते प्रेमी जी का भी दुःख कम करते होंगे के सकलन का श्रेय श्री यशपाल जैन भूमिका पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लि अमर साहित्य का रूप दे दिया है।

प्रेमोपहार (कविता संग्रह)—ले श्री खुशीराम शर्मा वाशिष्ठ विशारद प्रेम तक) मूल्य ।≶)। सभी कविताएँ सरस अ एक उदाहरण लीजिये—

लौट गये हैं पथ के सा
नीरव है सारा सं
प्रियतम नहीं अभी तक
हा कैसा निष्ठुर र।

कतरन (गद्य गीत)— श्री सुबोध कुमार अग्रवाल मूल्य ।=) पता—चूरू गोष्ठी चूरू।

प्रायः सभी गद्य गीत गम्भीर चिन्तन का द्वार खोलने से प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण प्रर्याप्त होगा—

छोटे से जलते हुये मिट्टी के दीपक ने पूछा—'रात्रि मैं किस प्रकार तुम्हें धन्यवाद दूँ ?'

रात्रि ने उत्तर दिया—'अपनी निष्पक्ष मौन लोक सेवा से।'

पत्नी के पत्र

लेखक, श्री बुद्धिसागर वर्मा, बी० ए०, एल० बी० विशारद

(४)

केदारपुर

प्राणेश, प्रणाम १२—२—२१

आपका प्रेम पत्र मिला। पढ़ कर क्षण भर के लिये आनन्द सागर में लहराने लगी। नेत्रों में आनन्द के आँसू बह चले। प्रेम पत्र कई बार पढ़ा, किन्तु तृप्ति न हुई।...

सौन्दय के विषय में जो कुछ आपने लिखा है, मुझे बहुत पसन्द आया। किन्तु हम स्त्रियों में इस शिक्षा का नितान्त अभाव है। फिर बताइये यह योग्यता हममें कहाँ से आवे। यदि हमारे माता पिता शिक्षित और समझदार होते और हमें प्रत्येक उपयोगी विद्या का अभ्यास कराया गया होता तो निस्सन्देह हम इस योग्य होती। किन्तु जब वे स्वयं शिक्षित नहीं, तो हमें उत्तम शिक्षा कहाँ से मिलती। मैंने 'गृहलक्ष्मी' में पढ़ा था कि स्त्री को प्रत्येक विद्या का ज्ञान होना चाहिये, तभी भारतवर्ष की उन्नति सम्भव है। वर्तमान दशा में आप सरीखे गुणवान उदारचित सत्पतियों को चाहिये कि स्वयं अपनी पत्नियों को प्रत्येक विद्या का ज्ञान करावें। आपकी इस शिक्षा का परिणाम बहुत ही शुभ होगा।

सदा मेरी इच्छा रहती है कि जो वस्तु आपको प्रिय हो, वही मैं धारण करूँ—क्या वस्त्र, क्या आभूषण, क्या श्रृङ्गार और क्या मानसिक इच्छाएँ। किन्तु यह बात सहसा मैं आपसे कह न सकी—मुझे साहस न हुआ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप अपने सारे उद्देश्य मेरे सामने प्रकट करें कि आपको कैसी वेशभूषा पसन्द है।

आप मुझसे सदा कहा करते हैं कि प्रसन्न रहा करो। मैं इसकी उपयोगिता भली भाँति समझती हूँ। परन्तु प्राणेश, मेरा चित आपसे पृथक होकर कभी प्रफुल्लित नहीं होता। यद्यपि यहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं है, तो भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं होता। फिर भी मैं प्रयत्न करूँगी कि आपकी आज्ञा का पालन हो सके। जब कभी अज्ञान वश आपकी किसी आज्ञा का उल्लङ्घन हो जाता है, तो मुझे कितनी ग्लानि होती है, यह मैं ही जानती हूँ।

श्रीमती माता जी का स्वास्थ्य वैसे तो अच्छा है किन्तु पूज्य पिता जी के स्वर्गवास के कारण वे रात दिन सुस्त रहा करती हैं। हम लोग उनका जी बहलाने का प्रयत्न करते रहते हैं। वे भोजन एक ही समय करती है। यदि जबरन खिला भी दिया जाय तो पचता नहीं। मेरी समझ में अब उन्हें धैर्य पूर्वक भगवद्भजन करना चाहिये—यही विधवा का धर्म है। यदि आप 'गीता' समाप्त कर चुके हों तो होली में लेते आइयेगा। मैं पढ़ कर उन्हें सुनाया करूँगी। शायद इसी से उन्हें कुछ शान्ति मिले।

आपकी भेजी हुई 'उपकारिणी' पुस्तक बड़ी रोच[illegible] और शिक्षाप्रद है। 'गृहलक्ष्मी' की ४ प्रतियाँ अब त[illegible] पास आ चुकी हैं। रामेश्वरी को पत्र लिख चुकी हूँ। [illegible]

आपका पुत्र सानन्द है। उसे 'बालसुधा' पि[illegible]ा हूँ। अब पी लेता है। कुछ कुछ बोलने भी लगा है[illegible]

आपकी—[illegible]ला

(५)

[illegible]ारपुर

हृदयेश्वर, सप्रेम नमस्ते! [illegible]१०—२५

चलते समय मैंने आपसे विनय की थ[illegible] कि शीघ्र ही अपने कुशल समाचार से सूचित करियेगा, [illegible]तु अभी तक आप ने मेरी सुधि न ली। चित्त अशान्त [illegible]

नाथ, जब आपको विदा कर मैं कोटे[illegible]ई, तो मुझे ऐसा लगा मानों प्राण शरीर से निकल ग[illegible]न दिन तक किसी काम में जी न लगा।

जब सवेरे मुन्नी सोकर उठी, तो आ[illegible]प कहीं ढूँढ़ आई। जब आप न मिले तो 'हाय पापा[illegible]कर फूट फूट कर रोई।

आज्ञानुसार हिन्दी और अँग्रेजी [illegible]खने का अभ्यास कर रही हूँ। अँग्रेजी पढ़ना भी आरम्भ कर दिया है। देखें कहाँ तक सफलता मिलती है। आजक[illegible] गीता पढ़ रही हूँ।

आपकी [illegible]सी—सुशीला

(६)

केदारपुर

हृदयेश, प्रेम! २—११—२५

बहुत प्रतीक्षा के बाद आपका कृपा पत्र पाया। यदि मैं पक्षी होती तो उड़ कर आपके दर्शन अवश्य कर जाती और अपना हृदय चीर कर दिखा देती, किन्तु—

प्रभा जाय कहँ भानु विहाई ।
कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे ।
लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥

अस्तु । आपके शुभागमन का दिन जोह रही हूँ । अब की आपने पत्र भेजने में बड़ा विलम्ब किया । भविष्य में ऐसा न कीजियेगा क्योंकि इस दशा में मेरे जीवन का सहारा एक मात्र आपके पत्र ही हैं । मैं जानती हूँ आपको अवकाश कम है, किन्तु नाथ ! मेरे लिये इतना कष्ट ही सही ।

आपकी दी हुई सभी पुस्तकें पढ़ डालीं । इधर घर का काम काज अधिक होने के कारण लिखना नहीं हो सका । [illegible]लक्ष्मी' नियमित रूप से निकलती है या नहीं । मेरा [illegible] उसमें लेख भेजने का है । एक गल्प लिखी भी है । [illegible]पके जाने के बाद माता जी बनारस चली गईं । बच्चा[illegible] भी उन्हीं के साथ भेज दिया, और उसे पढ़ाने के लि[illegible] बहुत बहुत कह दिया है । आपकी प्यारी मुन्नी आप[illegible] याद करती है । कहती है—'हमाले पापा चौथे प[illegible]हैं, तलौ ।'

अ[illegible]या लिखूँ । हृदय के भाव कहाँ तक लिखे जा सकते [illegible] ।

आपकी—सुशीला

(६)

बनारस

जीवन ध[illegible] २३—११—१९२५

बहुत [illegible] बाद प्रेम रस से भर पूर प्रेम पत्र पाकर हृदय आन[illegible] गद्गद हो गया ।·············

यह [illegible] बड़ा हर्ष हुआ कि आपके प्रोफेसर साहब ने आपकी प्र[illegible]ा की । अभी क्या, आपकी प्रशंसा तो संसार करेगा । [illegible]रमात्मा आपको सदा सुखी रक्खें, इसी में मुझे सुख है । [illegible]आपके आने के दिन ज्यों ज्यों कम होते जाते हैं, त्यों त्यों [illegible]री प्रसन्नता बढ़ती जाती है ।

सम्पादक जी ने मेरी गल्प पसन्द की, तो इसमें मेरी क्या प्रशंसा ? यह सब मेरे प्रभु का ही तो प्रताप है । उन्हीं की बड़ाई होनी चाहिये ।

विघ्न बाधाओं से लड़ कर मैंने अँग्रेजी पढ़ना फिर आरम्भ कर दिया है । देखिये इस बार कुछ पढ़ पाती हूँ या नहीं ।

आपकी 'मुन्नी' बहुत याद करती है । शाम को जब लेटती है तो नित्य पूछा करती है हमारे 'पापा' कब आवेंगे । शेष फिर—

आपकी दासी—सुशीला

(७)

बनारस

हृदयेश्वर, ३—१२—२५

आपका प्रेम पत्र पाकर हृदय प्रफुल्लित हो गया । मन मधुप आपके सुन्दर मुख कमल के चारों ओर चक्कर लगाने लगा । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो हम परस्पर बातें कर रहे हैं । ध्यान टूटा, कहीं कुछ भी नहीं !

मैं किस योग्य हूँ । सारी बड़ाई आपकी है । मुझे तो शुद्ध बोलना तक न आता था । जो कुछ थोड़ी बहुत हो सकी हूँ, आप ही के असीम परिश्रम का फल है । जब मैं पहले पहल इस घर में आई थी, आप जैसे विद्याप्रेमी व्यक्ति मुझ जैसी अयोग्य नारी से घृणा करते तो क्या आश्चर्य था ? पुरुष बहुधा ऊपरी तड़क भड़क बहुत देखते हैं, वह भी मुझ में न थी । अन्तःकरण की परख तो आप जैसे धर्मशील बुद्धिमान व्यक्ति ही कर पाते हैं ।

आपने लिखा, जिस वस्तु की आवश्यता हो लिखो । नाथ, अपने कर कमलों द्वारा यदि पृथ्वी तल की रज भी उठा कर दे देंगे, तो मैं उसे भी अमृत तुल्य समझ कर सहर्ष ग्रहण करूँगी, आपकी लाई हुई वस्तु तो वस्तु ही है ।

यदि आप काँग्रेस देखने जाना चाहते हैं तो दो दिन के लिये चले जाइये । यहाँ आने पर फिर मैं कहीं न जाने दूँगी । अधिक दिन न लगाइयेगा । एक एक दिन गिन रही हूँ । जी बहुत ऊबता है ।

आप कानपुर जाकर बड़े बड़े महात्माओं के दर्शन अवश्य कर आइये । ऐसा अवसर शीघ्र शीघ्र नहीं मिलता ।

बच्चा और मुन्नी प्रणाम करते हैं ।

आपकी—सुशीला

कुछ काम की बातें

लेखक, श्री 'खब्बू'

'दीदी' ~~के किसी पिछले अङ्क~~ में मैंने एक बहन का लेख पढ़ा था। उन्होंने ठीक ही लिखा था—'रसोई घर मेरा दफ्तर है। जैसे पुरुष अच्छी पोशाक पहन कर अपने दफ्तर जाते हैं; वैसे ही मैं अच्छी पोशाक पहन कर रसोई घर में प्रवेश करती हूँ।' मैं उस बहन की तारीफ करता हूँ। उसने रसोई का मर्म समझा है।

× × ×

मनुष्य के जीवन में सबसे सुन्दर घड़ी वह है जब वह भोजन करने बैठता है। यह सुख और शान्ति की बेला है। आदर्श गृहिणी वह है जो इस बेला को अत्यन्त मधुर बना दे। रसोई घर का वातावरण ऐसा होना चाहिये कि खाने वाले को चौके में पहुँचते ही सब कुछ भूल जाय। उसे भूख मालूम पड़ने लगे।

× × ×

भोजन बनाना तो सभी स्त्रियाँ जानती हैं। दाल, भात, रोटी, साग, कढ़ी, चटनी हमारे रोज के भोजन के अङ्ग हैं। ये चीजें सभी स्त्रियाँ आसानी से घण्टे दो घण्टे में तैयार कर लेती हैं। परन्तु इतना ही काफी नहीं है। चतुर स्त्री को यह भी आना चाहिये कि वह खाने वाले के सामने यह भोजन किस प्रकार रक्खे; यानी थाल को किस प्रकार सजावे?

× × ×

थाल सजाना एक कला है। आम तौर पर स्त्रियाँ थाल में एक तरफ दाल, दूसरी तरफ भात और भात पर रोटी रख देती हैं। यह सबसे भद्दा ढङ्ग है। दाल सदैव एक कटोरी में, भात एक छिछली कटोरी या तश्तरी में रखना चाहिये। यानी बड़ी थाल में कुछ भी न रखा जाय। चटनी अचार वगैरह वगैरह के लिये नन्हें नन्हें काँच के बर्तन होने चाहिये। आप कहेंगी यह खर्चीला हिसाब है। बड़ी थाल से ही क्यों न काम चलाया जाय। तब ऐसा कर सकती हैं कि सूखी चीजें जैसे रोटी, भात और सूखा अचार आदि तो थाल में रख दें और रसेदार चीजें जैसे दाल, मट्ठा, कढ़ी, तरकारी आदि कटोरियों या तश्तरियों में रखें। थाल छोटा हो या उसमें रखने को जगह न हो तो ये चीजें उसके इर्द गिर्द रख सकती हैं। × ×

रसोई के समय किसी किस्म की अप्रिय बात न होनी चाहिये। ग्रामोफोन या रेडियो हो तो उस समय एक अच्छा संगीत लगा सकती हैं। यह कुछ न हो तो ऐसी मधुर बातें करें जिससे खाने वालों का मन खुश हो। रसोई बनाते समय आप साफ कपड़े पहनें और परोसते समय तो और भी साफ व स्वच्छ वस्त्र पहनें। रसोई घर में धूपबत्ती जला दें और इसका ध्यान रखें कि कहीं मक्खियाँ आदि न दिखाई पड़ें। बस यह जान पड़े कि आपका रसोई घर देव-मन्दिर है।

× × ×

खाने वालों के सामने रोज एक ही प्रकार का भोजन न रक्खें। प्रतिदिन उन्हें भोजन में फरक जान पड़े। रो[illegible] किसी दिन पतली बनावें किसी दिन मोटी, किसी दिन छो[illegible], किसी दिन बड़ी। किसी दिन उसमें नमक मिला दें। [illegible]सी दिन नमक प्याज व जरा सी मिर्च मिला लें, किसी [illegible] घी से चुपड़ दें। किसी दिन जीरा जल से तर कर दें। [illegible] दिन योंही रहने दें। दालें भी बदलती रहें। किसी [illegible]हर, किसी दिन मूँग या उर्द। किसी दिन मसूर [illegible] दिन उर्द और पालक एक में पकाएँ, किसी दिन [illegible]ना और कुम्हड़ा एक में। किसी दिन कढ़ी बनाएँ। किसी [illegible]दिन खाने वालों के सामने दही रखें, किसी दिन मट्ठा, किसी [illegible]न आम का पना, किसी दिन और कोई तरल पदार्थ [illegible]ी दिन जरा सा नमक और माड़ से भी भोजन में [illegible] प्रतीत होगा। इसी प्रकार साग भी बदलती रहें।

× × ×

भोजन का टाइम मुकर्रर रखें। पर हु[illegible] दिनों में कुछ देर भी कर सकती हैं। हाँ, उस दि[illegible] ज्यादा पदार्थ बनावें। कुछ लोग मीठा पसन्द कर[illegible], कुछ नमकीन। सबकी रुचि का खयाल रक्खें।

× × ×

लन्दन के पार्लियामेंट में प्रायः दावतें होती रहती हैं। इसके लिये एक रसोई विभाग अलग है। कहते हैं यह विभाग ४ घण्टे पहले सूचना मिलने पर हजारों आदमियों के लिये भोजन तैयार कर देता है। और प्रति बार एक न एक चीज ऐसी तैयार करता है जो उस घर में पहले कभी नहीं पकी थी। माना कि आप अपने रसोई घर को पार्लामेंट का रसोई विभाग नहीं बना सकतीं; पर तेजी और प्रतिदिन एक नई वस्तु बनाने में उसका अनुकरण तो कर ही सकती हैं।

दुबलाने की दवा !

लेखिका, एक भारतीय रानी

हिन्दुस्तान कंकालों की बस्ती है। इस देश में जन्म लेकर मोटा होना बड़े सौभाग्य से ही सम्भव हो सकता है। जिधर भी नज़र डालिए, आपको लाखों स्त्री पुरुष बालक वृद्ध मिलेंगे जो मांस रहित ढाँचा मात्र रह गए हैं और मोटे होने को तरस रहे हैं। परन्तु इसी देश में कुछ ऐसे सौभाग्यशाली स्त्री-पुरुष भी मिलेंगे जो जरूरत से ज्यादा खाने और जरूरत से ज्यादा आराम करने के कारण बेहद मोटे हो गए हैं और दुबलाने के लिए दवा ढूँढ रहे हैं। यह लेख मैं उन्हीं सौभाग्यशाली भाई बहनों के लिए लिख रही हूँ।

मुझे यह कहते कुछ शर्म मालूम पड़ती है कि मैं स्वयं उनमें से एक हूँ। एक समय था जब मैं भी बहुत मोटी थी। यों कहिए कि मेरा खानदान ही मोटा था। मेरे पिता जी इतने मोटे थे कि अपने आप करवट नहीं बदल सकते थे और मेरी माता जी उनसे भी बढ़ चढ़ कर मोटी थीं। उनकी सन्तान भला मैं मोटी कैसे न होती ?

जब मैं दस वर्ष की छोटी बालिका थी तभी २५ वर्ष की हृष्ट पुष्ट युवतियों से भी अधिक भारी थी। अपनी इस दशा पर मैं बहुत दुःखी हुई। मेरी रक्षा मेरी एक मौसी ने की। वे मेरा इलाज कराने मुझे इङ्गलैंड और वहाँ से फिर अमरीका लिवा गईं।

अमरीका मोटों का देश है। वहाँ मैंने ऐसे ऐसे मोटे स्त्री-पुरुष देखे कि मैंने अपनी मोटाई को गनीमत समझा। मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि मैं उनके समान मोटी नहीं हुई।

मौसी के साथ मैं अनेक डाक्टरों और डाक्टरनियों से मिली। पानी की भाँति रुपया बहाया। परन्तु शीघ्र ही मुझे अनुभव होने लगा कि मैं मोटापन के साथ ही साथ कहीं अपनी जिन्दगी भी न गँवा बैठूँ।

मैंने स्वयं देखा कि अमरीका की स्त्रियाँ किस प्रकार दुबलाने के पीछे अपना स्वास्थ्य चौपट कर रही हैं। इस प्रकार का दुबलापन लेकर क्या होगा ?

अमरीका में मुझे एक डाक्टर मिले जिन्होंने वादा किया कि उनके पास एक औषधि है जिसके सेवन से एक हफ्ते में ही मैं अत्यन्त दुबली हो सकती हूँ। मेरी मौसी को उस पर विश्वास न हुआ। पर मैंने चोरी से उसकी दवा ली और उसका सेवन किया। इसमें शक नहीं कि मैं उस दवा से दुबली हो गई परन्तु मैं बिल्कुल बदल गई। मेरा शरीर रोगी हो गया, मेरी आँखों की ज्योति क्षीण हो गई। कुछ ऐसा जान पड़ा कि मैं अन्धी हो जाऊँगी और मर जाऊँगी। तब मैंने उस दवा का सेवन बन्द कर दिया और ऐसी दवाएँ खाने लगी जो उसका असर कम करें। खैर, सालों बाद मैं उस दुबलेपन के चंगुल से छूटी।

'दीदी' पढ़ने वाली बहनें पूछेंगी कि वह कौन दवा थी। उसका नाम डिनिट्रोफेनल (Dinitrophenol) है। वह बहुत ही हानिकारक दवा है। अमरीका के अनेक राज्यों में उसका सेवन कानून द्वारा बन्द कर दिया गया है। फिर भी बहुत सी स्त्रियाँ हैं जो लुक-छिप कर उस दवा का प्रयोग करती हैं और पछताती हैं।

जो भारतीय बहनें अमरीका जाती हैं वे इसकी छूत यहाँ लाती हैं। सर्वसाधारण ने इसका नाम भी न सुना होगा। परन्तु भारत की रानियों महारानियों और सेठानियों में इसकी चर्चा है क्योंकि वे प्रायः मोटी होती हैं और दुबलाने की सरल औषधि खोजा करती हैं। अपनी उन बहनों से मैं निवेदन करूँगी कि वे भूल कर भी इस औषधि का सेवन न करें। इतना ही नहीं दुबलाने के लिए वे कोई

दवा न खायँ। मोटापन शरीर की एक विशेष स्थिति है और दवाओं से नहीं विशेष प्रकार के भोजनों और व्यायामों से काबू में लाया जा सकता है।

डिनिट्रोफेनल का आविस्कार पिछले महायुद्ध के समय हुआ था। लड़ाई का सामान बनाने वाले कारखानो में इसका पहले पहल पता चला था। इसके सम्पर्क में आने पर मोटे आदमी तत्काल दुबले होने लगते थे। कारण यह होता था कि यह तत्व शरीर के भीतर पहुँच कर विनाश का कार्य आरम्भ कर देता था। यानी मानव शरीर के लिए यह विष समान था। इसके सेवन करने वाले जुकाम, खुजली, फोड़े फुंसी के शिकार होकर दुबलाने लगते थे और अन्त में अन्धे होकर मौत के घाट उतरते थे। उनकी संतानें भी बेडौल और रोगी होती थीं। खैर, यह अच्छा ही हुआ कि अमरीका में इस दवा की बिक्री रोक दी गई। दुबली होने की और भी दवाएँ प्रचलित हैं। वे सभी हानिकारक हैं। इसलिए दुबलाने के लिए कोई दवा मत पिएँ।

सवाल उठता है, फिर क्या करें! बिना दवा के भी दुबलाना सम्भव है और वही अच्छा है। वह है भोजन में सुधार और व्यायाम। याद रक्खें कि जुलाब दुबलाने की औषधि नहीं है और शरीर से काफी पसीना निकलवाने से भी दुबलापन नहीं आता।

सबसे अच्छा उपाय है भोजन में ताजे फलों और शाक भाजी की मात्रा बढ़ा देना, दिन को बिलकुल न सोना, पानी खूब पीना और टहलना। ऐसा आप एक महीना करके स्वयं अपने वजन में फरक देख लें। अधिकांश स्त्रियों के तोंद इसलिए निकल आती है कि वे पेड़ू की मांस पेशिओं से कोई काम ही नहीं लेतीं। कुछ ऐसे व्यायाम करें जिनसे पेड़ू पर बल पड़े तो तोंद नहीं निकलेगी।

मुटापा एक तो वंशगत होता है। दूसरा अधिक भोजन और कम व्यायाम से होता है। दूसरे प्रकार का मुटापा भोजन और व्यायाम में सुधार से फौरन जाता रहता है। पहले प्रकार का मुश्किल से जाता है। पर उचित भोजन और व्यायाम से, वह काबू में रहता है और शरीर का स्वास्थ्य और सौंदर्य भी कायम रखता है।

मैं आज भी मोटी हूँ। पर सादा भोजन करती हूँ। प्रतिदिन दो मील टहलती हूँ और कोई आध घण्टे चक्की चलाती हूँ। इससे मेरा मुटापा मेरे काबू में है और शरीर भी सुडौल दिखता है।

हाथ में रोएँ

प्रश्न—मेरे हाथ में रोएँ बहुत हो गये हैं? क्या करूँ?

उत्तर—दिन को कहीं बाहर जाना हो तो पूरी बाँह के जैकेट पहनें और पैरों में मोजे पहन सकती हैं। इस प्रकार दिन में इनका भेद किसी को नहीं मालूम होगा। रात में बाहों में पाउडर लगा सकती हैं। या आप अधिक खर्च कर सकें तो रात में बाहों में 'मग्कोलाइज्ड वैक्स' लगावें। इसके साथ ही हाथ-पाँव में प्रति दिन तैल की मालिश करें। इससे रोएँ कम हो जायँगे।

व्यायाम करूँ या नहीं ?

प्रश्न—मैं आक्टोबर ४३ में टायफायड [illegible] पीड़ित हुई। दिसम्बर में अच्छी हुई। जनवरी में [illegible] व्यायाम शुरू किया। लेकिन व्यायाम करने से पेट [illegible] में दर्द होने लगता है। तो क्या व्यायाम न क[illegible] पहले मेरी कमर पतली व शरीर सुडौल था। पर बीमारी से उठने के बाद कमर मोटी और शरीर पतला हो [illegible] है। कुछ उपाय बतावें।

उत्तर—इस सबका कारण कमजोरी [illegible] टायफायड ज्वर के बाद शरीर बहुत कमजोर हो [illegible]। उससे उठते ही तुरन्त व्यायाम करने से लाभ [illegible] बजाय हानि पहुँच सकती है। अतएव प्रारम्भ में थो[illegible] टहलना काफी है। बाद को ज्यों ज्यों शरीर में बल [illegible] जाय अन्य व्यायाम बढ़ाती जा सकती हैं। शरीर में [illegible] ताकत आने पर बाकी सब शिकायतें अपने आप दूर [illegible] जायँगी।

कड़ी चूड़ियां

प्रश्न—मेरे हाथ सुन्दर होते हुये भी बहुत कड़े हैं। चूड़ियाँ पहनने में मुझे बड़ी कठिनाई होती है। क्या करूँ?

उत्तर—चूड़ियाँ पहनने से पहले हाथों में जरा सी ग्लीसरीन अच्छी तरह मल लें। इससे हाथ मुलायम हो जायँगे। तब जरा कड़ी चूड़ियाँ भी आसानी से पहनी जा सकेंगी।

चाची

लेखिका, श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए०

[नरेशचन्द्र का ड्राइंग रूम। आधुनिक पाश्चात्य ढंग से सजा हुआ है। सजावट से सुरुचि और सम्पन्नता का परिचय मिलता है। धरती पर दरी बिछी है उसके ऊपर दरी से छोटा कालीन के चारों ओर गद्देदार कुर्सियाँ और सोफे रक्खे हैं। बीच में चमकीली पालिशदार मेज पर फूलदान है। दरवाजों पर परदे टँगे हैं। मैंटल पीस पर कई एक सुन्दर खिलौने सजे हैं। एक तरफ दीवार से सटा हुआ रेक है जिसमें पुस्तकें लगी हैं। उसके ऊपर वाले पटरे पर बिजली का लैम्प रक्खा है। प्रातःकाल का समय है। नौकर अभी [illegible]भी झाड़ू दे कर गया है। गृहणी राधारानी बगल वाले [illegible] में से आती है। साफ सुथरी साड़ी अत्यन्त सुघराई से [illegible]े है। सिर खुला है बँधे हुये जूड़े में पीला गुलाब [illegible]त लगा है। वह कमरे की सफाई देखने आई है। साम[illegible]क रद्दी पत्र पड़ा देख कर बड़बड़ाती है]

राधा[illegible]ये कम्बख्त नौकर तो बस गोली मार देने लायक हैं। [illegible]ाड़ू देकर गया है। यह कागज मेरी जान को रोने को छो[illegible]ाया है (और आगे बढ़ कर मेज देखती है) इस पर भ[illegible]म धूल भरी है, और यह गुलदस्ता सूख गया है पर [illegible] को बदलने की फिकर ही नहीं है। क्या करूँ क्या [illegible]। एक झंझट तो सिर पर सवार है ही ऊपर से नौ[illegible]लग परेशान किये हैं। बुलाऊँ पाजी को दुबारा करेग[illegible]ठीक होगा। भज्जू, अरे! ओ भजुआ।

[भज्ज[illegible]न लिये हुये व्यस्त सा आता है। आते ही राधारानी ब[illegible] पड़ती है]

राधा०—झा[illegible] लग गई।

भज्जू—हाँ स[illegible]कार।

राधा०—सरक[illegible]र वाले। झूठ बोलता है।

भज्जू—नहीं तो मलकिन।

राधा०—(पैर से पत्र दिखा कर) फिर यह कागज कहाँ से आया। यह मेज पर धूल क्यों है?

भज्जू—अभी पोंछी नहीं है। झाड़ू रख कर झाड़न लेने गया था। अभी सफाई किये देता हूँ। यह कागज तब तो रहा नहीं।

राधा०—तो अब कहाँ से आ गया। मैं ले आई क्या। घर में बच्चे भी नहीं है जो डाल जाँय।

[भज्जू चुप चाप झुक कर पत्र उठा लेता है फिर अपना काम करने लगता है। मेज कुर्सी इत्यादि पर पड़ी हुई धूल पोंछता जाता है। राधारानी कुछ क्षणों तक उसका काम देखती रहती है फिर सहसा कोई बात याद हो आवे इस ढंग से कहती है।]

राधा०—रुक जा—पहले माली को बुला ला तब झाड़ना (भज्जू चला जाता है। इसी समय पीछे के द्वार से तेरह चौदह वर्ष की एक बालिका आती है। चेहरे पर गम्भीरता मिश्रित उदासी है। वस्त्र पहनने के ढङ्ग से ज्ञात होता है उसका ध्यान इन सब पर अधिक नहीं है। मामूली किनारेदार साड़ी का पल्ला पीठ पर लटक रहा है। वह जैसे कुछ ढूँढ़ सा रही है। राधारानी के मुख पर उसे देखते ही विरक्ति के भाव प्रकट हो जाते हैं। पहले तो बालिका उसे देख नहीं पाती फिर देख कर कुण्ठित सी हो जाती है। उस के पास आकर कोमल स्वर से कहती है।)

बालिका—चाची जी आपने मेरा पत्र देखा है।

राधारानी—(रूखे स्वर से) मुझे तुम्हारा पत्र देखने की कौन सी जरूरत पड़ी थी।

बालिका—मेरा यह मतलब नहीं है। पिता जी का पत्र आया था। वही मैं चाचा जी से लेकर जा रही थी और भी दो तीन पत्र थे अखबार था पता नहीं कब वह पोस्टकार्ड गिर पड़ा यहीं कहीं गिरा होगा क्योंकि मैं इसी कमरे में से गई थी। मैंने सोचा शायद आपने पड़ा देखा हो।

राधारानी—रजनी मुझे तभी तुम्हारे ऊपर गुस्सा आता है। मैंने ऐसी कौन सी बात कह दी जो तुमने इतनी व्याख्या कर डाली। अपना खत जाकर ढूँढ़ ला मुझे फुरसत नहीं है।

[नौकर का छोड़ा हुआ झाड़न उठा कर फटाफट कुर्सी इत्यादि झाड़ना शुरू कर देती है। रजनी का मुख करुण व्यथा से भर जाता है। नेत्रों में अश्रु छलछला आते

हैं। दीर्घ श्वास त्याग कर वह अंचल के कोने से नेत्र पोंछ लेती है। राधारानी बड़बड़ाती जाती है।]

राधारानी—बस टिसुवे बहने लगे। आग लगे मेरी जीभ में जो मुझसे बिना बोले रहा नहीं जाता। पर क्या करूँ कुलच्छन मुझसे देखे नहीं जाते। माँ ने रोना भर सिखा दिया और कुछ न सिखाया। सब ला कर मेरी खोपड़ी पर पटक दिया। ढङ्ग सिखाऊँ तो बीबीरानी रोयें, न सिखाऊँ तो दुनिया नाम रक्खे। न इधर चैन न उधर।

रजनी—मैंने कुछ बुरा नहीं माना चाची जी। मैं तो पत्र के लिये उदास हो रही हूँ। उसमें माँ का हाल चाल होगा। मैं पढ़ नहीं पाई। अब तीन चार दिन बाद कहीं जाकर चिट्ठी आयेगी। (कुछ सोच कर) चाचा जी से कहूँ अभी तार दे कर हाल पूछ लें। (चलने को उद्यत होती है।)

[राधारानी तार का नाम सुन कर एकदम से जल उठती है। झाड़न पटक कर सीधी खड़ी हो जाती है और क्रुद्ध स्वर से चीख कर कहती है।]

राधारानी—तार दिलाने को बड़ा आसान समझ लिया है। कुछ खर्च थोड़े ही होगा उसमें। पर तुम्हें क्या पैसा तुम्हारे चाचा का है। तुम्हारा तो नहीं। एक नहीं चार चार तार दिलावे। गलती अपने आप की। चपत पड़ेगी हमारे सिर। तार वार नहीं दिया जायगा। दो चार दिन बाद ही हाल मिला तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा।

[गमनोद्यत रजनी इस चिल्लाहट से रुक जाती है। आश्चर्य से चाची की ओर देखती हुई खड़ी रहती है। इसी समय भज्जू माली को लेकर आता है। राधारानी उसे देखते ही बिगड़ उठती है। रजनी की गति जैसे कुण्ठित सी हो जाती है। वह खड़ी रह कर सुनती रहती है। राधारानी फूलदान में से फूल उठा कर माली के सामने फेंक देती है]

देख रे। जरा आँख खोल कर देख। ऐसा ही गुलदस्ता सूखा साखा कमरे में रक्खा जाता है। तू आखिर सारे दिन करता क्या है।

माली—सरकार ने मुझे गुलदस्ता लगाने को मना कर दिया है।

राधारानी—झूठा कहीं का। मुझी को बनाता है निकल जा यहाँ से।

माली—नहीं सरकार मैं झूठ नहीं बोलता। सरकार ने बीबीरानी को गुलदस्ता बनाने को कहा है।

राधारानी—बीबीरानी को (आश्चर्य से) रजनी को।

माली—जी सरकार।

[राधारानी रजनी की ओर घूम जाती है। माली चुपके से सरक जाता है। भज्जू झाड़न उठा कर कुर्सी झाड़ने लगता है। रजनी नई आफत आई देख कर भयभीत हो उठती है। राधारानी मारे क्रोध के एक शब्द नहीं बोल पाती। सहसा रजनी भज्जू के हाथ में पोस्टकार्ड देख पाती है, वह विचलित हो उठती है परन्तु राधारानी के डर के मारे चुप रहती है। इसी समय राधारानी झपट कर बाहर जाती है और कहती जाती है, 'अच्छा जरा इस बात का पता लगा लाऊँ तो इनसे पूछूँ।' मौका पाते ही रजनी—'भज्जू देखूँ यह कार्ड' कहती हुई जल्दी से उसकी ओर बढ़ती है। उसके अनजान में रेक पर उसके शरीर का धक्का लग जाता है। लेम्प नीचे गिर जाता है और उसका शेड टूट जाता है। रजनी को ध्यान नहीं है। वह भज्जू से कार्ड लेकर देखती है। अपना पत्र पाकर प्रसन्न [illegible] उठती है। तभी भज्जू कह उठता है।]

भज्जू—यह क्या किया बीबीरानी। [illegible]द

रजनी—(पत्र पर से नेत्र उठा कर) [illegible]नी गया भज्जू। [illegible]हीं

भज्जू—(लेम्प को उँगली से दिखा[illegible]) आपका धक्का लग कर यह टूट गया।

रजनी—(भयभीत होकर) अब क्या हो[illegible] भज्जू।

[एक क्षण में ही यह सब हो जाता [illegible]के दूसरे कमरे में से राधारानी गिरने का शब्द सुन कर भ[illegible]उत्तर देने से पहले ही लौट आती है। रजनी को ह[illegible]ीत सी खड़ी देख कर और लम्प टूटा देख कर सब स[illegible]ा लेती है। रजनी एकदम दौड़ कर भाग जाती [illegible] राधारानी चिल्लाती है।]

राधारानी—खड़ी रह जाती कहाँ है [illegible]! नवाब की बेटी।

[इसी समय बाहर वाले दरवाजे से [illegible]रेश अन्दर आता है। और गम्भीर स्वर से कहता है।]

नरेश—राधा क्या बात है। मैं कोई आधे घण्टे से तुम्हारी चिल्लाहट सुन रहा हूँ। बाहर तक शब्द जा रहा है। लोग सुन कर क्या कहेंगे।

[राधारानी बाहर शब्द जाने की बात सुन कर कुछ सकुचा सी जाती है और उत्तर नहीं देती।]

नरेश—बोलो जवाब दो। आखिर आज ऐसी कौन सी आफत आ गई।

राधारानी—(तीखे कण्ठ से) आफत तो उसी दिन से आ गई है जिस दिन से (हाथ से जिधर रजनी गई है उधर दिखा कर) वह महरानी आई हैं। और रही आज की चिल्लाहट सो उसका जवाब अभी देती हूँ। (चली जाती है। भज्जू भी सरक जाता है। नरेश कुछ समझ न पाकर खड़ा रह जाता है। एक क्षण में राधारानी रजनी को खींचती हुई लौट आती है।)

राधारानी—लो पूछो इससे। और (लैम्प की ओर दिखा कर) उधर देखो। बोल न अब बोलती क्यों नहीं। चुड़ैल कहीं की रोती है। दिन रात रो रो कर असगुन क्यों करती है। चुप, चुप रह (रजनी रोती जाती है। राधारानी तीन चार तमाचे लगाती है नरेश एक दम चौंक उठता है और अत्यन्त कड़े स्वर से 'राधा' कह कर दो छलांग में उसके पास पहुँच जाता है। एक हाथ से राधा को धक्का देकर [illegible]अलग कर देता है और रजनी को अपने अंक में कर ले[illegible]ता है। अत्यन्त स्नेह पूवक उसके मस्तक पर हाथ फेर क[illegible]ते [illegible]

—[illegible]न बेटा। रजनी (राधा से) न जाने कैसे तुम्हारा हाथ इस[illegible] उठता है।

राधा[illegible]नी—(व्यंग से) जैसे तुम्हारे मन इस पर प्यार उठता है। [illegible]

नरेश[illegible](घृणा भरे स्वर से) यहाँ से चली जाओ।

राधा[illegible]नी—जली जाऊँगी। पर पहले चाचा भतीजी का प्यार [illegible] लूँ। मैं भी देख लूँगी जैसा मेरा इसके पीछे अप[illegible]आ है। यह हमारी है कौन। मेरी लड़की होती तो [illegible] मुझे इसके पीछे इस तरह धक्का देते।

नरेश[illegible]री समझ पर पत्थर पड़े हैं तो मैं क्या बताऊँ। [illegible]न न सही अपनी माँ की लड़की तो है, मनुष्य तो है। [illegible]

राधारानी—[illegible] अपनी माँ की लड़की तो है ही। मैं भी समझती हूँ। [illegible] निस्संतान हूँ इसी से मेरी अवहेलना है इसकी माँ सन्तान[illegible]ती है तभी उनका आदर है। तभी यह·········।

नरेश—बस राधा। बस करो। जाती हो या मैं ही चला जाऊँ। (राधारानी वक्र दृष्टि से रजनी को देख कर चली जाती है। नरेश रजनी को लेकर सोफा पर बैठ जाता है। रजनी धरती पर बैठ कर नरेश के घुटनों पर सिर रख कर रोती है। नरेश धीरे धीरे उसकी पीठ पर हाथ फेरता है।)

नरेश—रजनी क्या बात थी। चाची क्यों बिगड़ रही थीं। बोलो बेटी।

रजनी—चाची जी (हिचकी लेती है।)

नरेश—हाँ कहो बेटी। डरो मत।

रजनी—नाना जी पिता जी वाला पत्र मुझसे गिर गया था। उसी को ढूढ़ रही थी। चाची जी सामने दीख पड़ी मैंने उनसे पूछ भर लिया वे नाराज हो गईं। इसी झंझट में फूलदान भी नहीं बदल पाई थी इस पर और नाराज हो गईं।

नरेश—फूलदान बदलना तुम्हारी नौकरी नहीं है रजनी। तुम बड़ा सुन्दर गुलदस्ता बनाती हो इससे और तुम्हारा मन बहलाने के विचार से ही मैंने तुमसे यह करने को कहा था। तुम्हारा जब मन चाहे बदलो। इसके लिये तुमसे कोई नाराज नहीं हो सकेगा। और (लैम्प दिखा कर) यह कैसे हुआ।

रजनी—भज्जू के हाथ में वही पत्र देख कर मैं उससे लेने को बढ़ी बस धक्का लग गया। (लज्जित सी होकर) बड़ा सुन्दर सा था चाचाजी। पर मैंने जान कर नहीं तोड़ा। क्या करूँ नुकसान तो हो ही गया।

नरेश—दुर पगली। तू दुखी क्यों होती है। टूट गया टूट जाने दे मान ले मुझसे ही टूट जाता या चाची से तो क्या होता।

रजनी—तो चाचीजी शायद आपको डाँट देतीं (मुस्कराती है।)

नरेश—(एकदम खिलखिला कर हँसता है) और मैं भी रजनी बेटी की तरह रो देता।

रजनी—(लजा कर) जाइये मैं आपसे नहीं बोलती।

नरेश—देखूँगा कब तक। अभी ही दौड़ी आयेगी कि माँ का हाल नहीं मिला, यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ।

रजनी—(विषाद पूर्ण स्वर से) चाचाजी! माँ अब अच्छी नहीं होंगी क्या (नरेश के कंठ में अवरोध हो जाता है। बालिका का दुख वह समझ लेता है। बड़ी कठिनाई से रुक रुक रुक कर कहता है।)

नरेश—नहीं·····क्या·····हाँ हाँ अच्छी क्यों नहीं होंगी रजनी। घबराते नहीं बेटी।

रजनी—मैं क्या करूँ चाचाजी। मेरा मन नहीं मानता। बीमारी के मारे वे भवाली में पड़ी हैं और मैं यहाँ। हर समय सब लोगों की याद आती है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

नरेश—क्यों बेटी यहाँ मन नहीं लगता।

रजनी—(रुक कर) न''हीं चाचाजी। आप जब तक पास रहते हैं तब तक तो अच्छा लगता है।

नरेश—(आवेग से) तो तू हमेशा मेरे पास रहेगी।

[रजनी चौंक सी जाती है। चाची का व्यवहार याद आ जाता है। वह सिर झुका लेती है। फिर धीरे धीरे कहती है।]

रजनी—माँ अच्छी हो जायगी तो फिर कैसे रहूँगी।

नरेश—हाँ—पर यदि'''''यदि। नहीं कुछ नहीं।

रजनी—(अत्यन्त व्यग्र होकर) यदि क्या चाचाजी। माँ नहीं बचेगी क्या। नहीं, नहीं, मैं मर जाऊँ पर माँ बची रहें। मैं यहाँ न रह पाऊँगी। चाचीजी''''''''(डर कर चुप हो जाती है।

नरेश—(मृदु स्वर से) चुप क्यों हो गई रजनी। मैं जानता हूँ चाची तुझे किस दृष्टि से देखती हैं। पर इसके लिये मरने की क्या आवश्यकता है। (अश्रुरुद्ध कण्ठ से) तू जानती नहीं मैं तुझे कितना स्नेह करता हूँ।

रजनी—(भरे कण्ठ से) जानती हूँ चाचाजी। पर मेरी समझ में नहीं आता चाचीजी मुझे क्यों नहीं चाहती। मैं तो उन्हें बहुत चाहती हूँ।

[राधारानी एकदम से कमरे के अन्दर फट पड़ती है। ज्ञात हो जाता है कि वह कहीं छिप कर सब बातें सुन रही थी। आते ही बरस पड़ती है।]

राधारानी—हूँ। तभी मुझे हटाया गया था। खूब शिकायतें हो रही हैं। अगर मैं ही सबकी आँख का काँटा हूँ तो मुझे हटा क्यों नहीं देते।

[नरेश का हृदय व्यथा से भरा है अतः वह क्रुद्ध न होकर रजनी को जाने को कहता है। वह धीरे से उठ कर चली जाती है। नरेश उठ कर राधारानी के पास जाता है। हाथ पकड़ कर करुण स्वर से।]

नरेश—राधा यहाँ आकर बैठो और मेरी बात सुनो।

[राधारानी कृत्रिम क्रोध और मान से हाथ छुड़ाने की चेष्टा करती है। परन्तु असफल होती है।]

नरेश—(म्लान हँसी से) छुड़ा नहीं पाओगी राधा। आज फैसला होता है। तुम इस समय जा नहीं सकतीं।

[नरेश के धीर अविचलित स्वर को सुन कर राधा व्यग्र सी हो उठती है। वह नरेश की ओर देखते देखते सोफे के पास आकर पृथ्वी पर बैठ जाती है। नरेश भी सोफे पर बैठ जाता है।]

नरेश—राधा। रजनी को यहाँ आये ६ महीने होते आये। परन्तु अब भी तुम्हारा वही भाव है। तुम इतने में भी उसे स्नेह न कर सकीं। कारण क्या है।

राधारानी—वह मेरी है कौन। जेठ की लड़की ही न। मेरी अपनी संतान तो है नहीं।

नरेश—क्या संसार में केवल अपनी ही सन्तान को प्यार किया जाता है। मैं उसे क्यों चाहता हूँ? मैं तो उसे अपनी सन्तान से भिन्न कभी भी नहीं समझता।

राधारानी—आप चाहेंगे क्यों नहीं। भाई की लड़की, भतीजी ठहरी।

नरेश—तो केवल इसी विचार से क्या तुम उसे नहीं चाह सकती। तुम्हारी भी भतीजी है। तुम्हारी उस पर ममता है मेरा भी द्वेष नहीं है। रजनी की बातों ने मुझे व्यथित कर दिया है। समझ लेना राधारानी, यदि रजनी को कुछ हुआ तो मैं तुम्हें जन्म भर माफ न करूँगा।

[राधा सिर नीचा कर लेती है। मन के [illegible]न्द को दबाने की चेष्टा करती है। बड़ी कठिनाई से [illegible]ती है]

राधारानी—आप'''''आप भी मेरा [illegible]हीं देख पाये।

नरेश—(दुख भरे स्वर से) देख पाय[illegible] हूँ राधा। तुम्हें सन्तान नहीं मिली अतः तुम्हें संसार क[illegible]सन्तानवती स्त्रियों से द्वेष सा हो गया है। उसकी जल[illegible] के बच्चों पर भी निकाल लेती हो। परन्तु राधा मैं [illegible]ऐसा नहीं देखना चाहता। मुझे लज्ज लगती है। अ[illegible]होता है। तुम मेरी हो, मेरे लिये गौरव की वस्तु ब[illegible]ा संकीर्ण हृदय क्यों बनाती हो।

राधारानी—(एक दम रो पड़ती है [illegible]'''''नहीं यह सब मत कहिये। आप नहीं देख पाये [illegible] कुछ नहीं देख पाये।

नरेश—(चकित होकर) अच्छा तो तुम्हीं बताओ।

राधारानी—(शांत होकर) मैं मैं क्या इतनी गई बीती हूँ जो निरसन्तान होकर सन्तानवती स्त्री से द्वेष करूँगी। वे क्या मेरी ईर्ष्या की पात्र हैं। वे पुण्यशील हैं, भक्ति, श्रद्धा की वस्तु हैं।

नरेश—राधा यह कैसी पहेली है। रजनी के प्रति तुम्हारा व्यवहार तो कुछ और ही बताता है।

राधारानी—ओफ फिर वही बात। रजनी से स्नेह करने को मेरा मन कितना व्यग्र है यह मैं कैसे दिखाऊँ।

कितनी कठिनाई से मैं हृदय के स्नेह को कुचलती चली आ रही हूँ। क्यों? इसे कोई क्या समझेगा।

नरेश—कोई समझ ही कैसे सकता है! रजनी से स्नेह करने में कौन सी बाधा है।

राधारानी—बाधा है स्वयं वह। मैं चाहती हूँ मैं जिसे सन्तानवत प्यार करूँ वह मेरी होकर रहे, मेरे नेत्रों के सामने रहे परन्तु इतनी......रजनी माता के अच्छे होते ही चली जायगी। वह भी जानती है और मैं भी जानती हूँ। फिर हृदय के समस्त आवेग से उसे प्यार करूँ सिर्फ पीछे से रोने के लिये। मेरा हृदय अब इतना दृढ़ नहीं है। अच्छा है उसके प्रति उठता हुआ स्नेह अभी से नष्ट हो जाय। जब वह हृदय के कोने में जड़ जमा कर बैठ जायगा तब मुझे नष्ट करके ही नष्ट होगा।

नरेश—समझ गया राधा। पर स्नेह बढ़ने न देने के लिये क्रूरता का आश्रय क्यों लेती हो।

राधा[illegible]—क्रूरता का आश्रय क्या जान कर लेती हूँ। वह तो मे[illegible]फल प्रयासों का फल मात्र है। ओह! समझ मैं नहीं [illegible]श्वर ने सन्तान नहीं दी तो इतनी तीव्र आकांक्षा क[illegible]? इतना वात्सल्य स्नेह क्यों दिया।

[नरेश [illegible]रे धीरे राधारानी के सिर पर हाथ फेरता है वह भी चुप र[illegible]ी है। कुछ देर बाद।]

राधारा[illegible]परन्तु मैं अपने हृदय से हार गई हूँ। मैंने रजनी की [illegible]न ली है। मैं मनको रोकूँगी नहीं अब। हाँ जीजी से [illegible]अपने लिये माँग लूँगी। वे देंगी अवश्य देना ही पड़े[illegible]हीं तो इस हृदय की तृषा कैसे मिटेगी।

[नरेश [illegible] उत्तर देने से पहले ही तार का लिफाफा लिये हुये भ[illegible] प्रवेश। नरेश शीघ्रता पूर्वक उसे लेकर खोलता है।]

नरेश—राधा[illegible] भैया का तार है। हम सबको बुलाया है। जल्दी से तैयार[illegible] कर लो तो दो बजे चल दें। मैं अर्जी छुट्टी के लिये लिख आऊँ।

[राधा का मुख भय और व्यथा से काला पड़ जाता है। वह उठ खड़ी होती है। भज्जू और नरेश चले जाते हैं।]

राधारानी—बुलावा आ गया जान पड़ता है। जीजी अब शायद न बचेंगी। नन्हीं सी रजनी माँ को खो बैठेगी। देखूँ शायद मैं वह स्थान ले सकूँ।

बरसात

लेखिका, मिस इन्द्रजीत

काले बादल दौड़ रहे है. आसमान में खेल रहे हैं॥
चिड़ियाँ चहक चहककर गातीं, फुदक फुदककर शोर मचातीं॥
नदियाँ वेग से बहती जातीं, राह नहीं चलती ही जातीं॥
समय सुहाना कितना है, पक्षी गाने गाते हैं॥
नभ में कैसे बादल छाये, बादल के टुकड़े मन भाये॥
हवा बाग में डोल रही है, कोयल कू कू बोल रही है॥
चारों तरफ हुई हरियाली, इसकी शान अजब निराली॥
वर्षा की ऋतु जब आती है, दुनियाँ को हरा बनाती है॥

प्यारा मुन्ना

लेखिका, मिस लीलीरानी 'चन्दा'

छोटा सा है मुन्ना प्यारा।
माता का है राज दुलारा॥
पढ़ने में है चित्त लगाता।
नित है शाला अपने जाता॥
चुन्नू इसको रोज खिलाता।
लड्डू पूरी और बताशा॥
दीदी का यह अच्छा भइया।
अच्छा गाना रोज सुनाता॥
'चन्दा' से है प्रीत दिखाता।
उसको अपने पास बुलाता॥

नई पहेलियाँ

(१)

तन मन उसका एक है। धड़ हैं उसके आठ॥
सिर है उसके चालीस। और पाँव एक सौ साठ॥

(२)

एक किले पर बुर्ज हजार।
बुर्ज बुर्ज पर पहरेदार॥
पहरे दारों ने कोट बनाया।
गारा मिट्टी भूल न लाया॥

—सावित्री देवी अग्रवाल

उत्तर—(१) मन का बाट। (२) शहद की मक्खियों का छत्ता।

आगा खां महल की एक कहानी

महात्मा गाँधी की वर्ष गाँठ

बहुत सी चीजें ऐसी हैं जिनका व्यवहार महात्मा गाँधी ने कभी नहीं किया। बहुत सी चीजें हैं जिनका व्यवहार वे ४० वर्ष से छोड़े हुए हैं। परन्तु पिछली बार जब आगा खाँ महल में उनकी वर्ष गाँठ मनाई गई तब उन्हें कुछ नये अनुभव करने पड़े और कुछ प्रतिज्ञायें तोड़नी पड़ीं। यह सब कैसे हुआ ? यह इस कहानी में पढ़िये।

महात्मा गाँधी अपने जीवन में कभी हवाई जहाज पर नहीं चढ़े हैं। उन्होंने रेडियो अवश्य सुना है, पर सेवाग्राम में एक भी रेडियो-सेट नहीं रखा। आइस क्रीम का स्वाद गत वर्ष आगा खाँ महल में महात्मा जी ने ४० वर्ष बाद पहली बार लिया। यह उनके जन्म दिन की बात है। उस दिन आगा खाँ महल के निवासियों ने उन्हें बहुत सी छोटी-छोटी बातों में आश्चर्य में डाल दिया। यह सब श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीयुत प्यारेलाल और मीराबेन के दिमाग की उपज थी।

उस दिन शाम को प्रत्येक व्यक्ति ने यह भाव जताया कि बाहर ठण्ड अधिक है और प्रार्थना भीतर होनी चाहिये। महात्मा जी ने आश्चर्य से देखा कि उनके आस पास का प्रत्येक व्यक्ति जाड़े से ठिठुर रहा है, और सब लोग दरवाजा बन्द करने की इच्छा जता रहे हैं।

महात्मा जी ने मुस्कराते हुये कहा—"मैं समझ नहीं पाता कि तुम सब लोगों को क्या हो गया। मुझे जाड़ा लगने की बात तो दर-किनार 'मैं' काफी गरमी महसूस कर रहा हूँ।"

लेकिन यह तो दरवाजा बन्द करने का बहाना था। प्रार्थना के बाद ज्योंही किवाड़ खोले गये, महात्मा जी ने देखा कि आगा खाँ महल के दालान में बहुत-सी चमकती हुई चीजें सजा कर रखी गई हैं। वह समझ गये कि उनके जन्म दिन के उपलक्ष में यह सब हो रहा है। उन्होंने केवल इतना ही पूछा' कि जिस स्थान पर स्वर्गीय श्री महादेव देसाई की चिता जलाई गई थी, वहाँ एक विशेष दीप जलाया गया है या नहीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि वहाँ [illegible] दीप जलाया जा चुका है तो उन्हें सन्तोष हुआ।

कुछ समय बाद दो छोटे मेमनों को मा[illegible]जी के सामने उपस्थित किया गया और उन मेमनों [illegible]रफ से महात्मा गाँधी के जन्म-दिवस सम्बन्धी अभि[illegible]पत्र पढ़ा गया। उस अभिनन्दन-पत्र में उन मेमनों ने [illegible]धी जी को अपना धर्म भाई माना, क्योंकि तीनों एक ही [illegible]माँ का दूध पीते थे। मेमनों ने अपने "बड़े भाई" की प्र[illegible] में बहुत-सी बातें कहीं और साथ ही यह भी कहा [illegible]द्यपि वह (महात्मा जी) अपनी 'माँ' का अधिकांश [illegible] स्वयं पी जाते हैं, तथापि अपने छोटे भाइयों के लि[illegible] वह कुछ दूध छोड़ देते हैं। इनके लिये वह धन्यव[illegible] पात्र हैं। महात्मा गाँधी का इस नाटक से खूब मनो[illegible]हुआ और साथ ही उनके हृदय के करुण कोमल स्था[illegible] भी उसने स्पर्श किया।

अन्त में महात्मा जी के जन्म दिवस [illegible] दावत की बारी आयी। महात्मा गाँधी को नमक के पानी का 'शोरबा' खजूर, सब्जियाँ आदि दी गईं। इन चीजों के बाद उन्हें आइसक्रीम (मलाई की बर्फ) भी दी गई। महात्मा गाँधी ने श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा अन्य व्यक्तियों की ओर मुस्कराते हुये देखा और कहा कि वह मलाई बर्फ किसी हालत में भी नहीं खा सकते। इसका कारण बताते हुये उन्होंने कहा--"अव्वल तो मैंने चालीस वर्ष से आइसक्रीम कभी खाई नहीं है तिस पर मैं केवल बकरी का दूध पीता हूँ।"

इस पर श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कहा—"आपने चालीस वर्ष से बहुत से काम नहीं किये हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि आप अपनी वर्ष गाँठ पर आइस क्रीम न खावें। हम लोगों ने इसे बड़े परिश्रम से विशुद्ध बकरी के दूध से तैयार किया है।"

इस तार्किक अनुरोध के विरुद्ध महात्मा जी के पास कोई अस्त्र नहीं रह गया। उन्होंने मुस्कराते हुये कहा—"नारी, तुम मूर्तिमान प्रलोभन हो!" यह कह कर उन्होंने आइस क्रीम को चखना शुरू किया और उसे पसन्द किया।

महात्मा गाँधी ने बैडमिंटन का खेल पहली बार आगा खाँ महल में ही खेला। सरकार ने वहाँ कैदियों के मनोरञ्जन के लिये बैडमिंटन कोर्ट तैयार किये जाने का प्रबन्ध किया था। जब 'कोर्ट' तैयार हो गया तो श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा अन्य व्यक्तियों ने महात्मा जी से अनुरोध किया कि वह उन लोगों के साथ बैडमिंटन खेल कर बैडमिंटन-कोर्ट का उद्[illegible]न करें। पहले तो महात्मा जी राजी नहीं हुये, पर अन्[illegible] उन्होंने श्रीमती नायडू का विपरीत पक्ष लेकर खेलना [illegible]र दिया।

खेल[illegible]मती नायडू ने महात्मा जी को खूब छकाया। श्रीमती नाय[illegible] के दाहिने हाथ में सम्भवतः कुछ दर्द हो रहा था, इसलिये उन्होंने बायें हाथ से खेलना शुरू किया। उनकी देखा[illegible]ी महात्मा गाँधी ने भी (जिन्हें इस बात का कुछ भी प[illegible]ीं था कि बैडमिंटन कैसे खेला जाता है) रैकेट को [illegible]थ में लेकर खेलना शुरू कर दिया। इससे दर्शकों का [illegible] विनोद हुआ। महात्मा जी ने शायद यह अनुभव ल[illegible]था कि यह खेल ही ऐसा है जिसे बायें हाथ से खे[illegible]ता है। पर यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि [illegible]ा जी बायें हाथ को दाहिने हाथ की तरह ही सहूलियत से [illegible]मा-फिरा सकते हैं। पिछले दिनों पत्रों का का जबाव देते सम[illegible] दाहिने हाथ से लिखते लिखते जब वह थक जाते थे तो बायें हाथ से लिखना शुरू कर देते थे।

(सकलित)

प्रजा-मण्डल

स्त्री के निर्बल तन और कोमल मन के भीतर कितना साहस और धैर्य छिपा हुआ है यह देखना चाहें तो श्रीनाथ सिंह लिखित हिन्दी उपन्यास प्रजा-मण्डल पढ़ें।

मूल्य १॥) : दीदी के ग्राहकों से १)

पता—दीदी कार्य्यालय, प्रयाग।

नानखटाई

जून १९४३ की 'दीदी' में नानखटाई बनाने की विधि बताई गई है। हमने बनाई। वैसे तो ठीक है पर उसमें 'किरकिर' आती है। यह शायद 'समुद्रफेन' का कारण है। अतः मेरे ख्याल से यदि 'समुद्रफेन' के स्थान पर 'मीठा-सोडा' काम में लाया जाये तो ठीक रहेगा। इसी तरह मार्च १९४३ की 'दीदी' में चोकर की कतरी बनाने की विधि है। इसका स्वाद तो बहुत ही विचित्र है। 'चोकर के पानी' के स्थान पर सादा पानी डाला जाए तब तो शायद स्वाद आये।

—सरला भटनागर

कमला शिवपुरी

मई की 'दीदी' में श्रीमती कमला शिवपुरी बी० ए०, बी० टी० का लेख (पति कैसा होना चाहिये ?) पढ़ कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। बहिन वास्तव में दीदी में ऐसे ही लेख निकलने जरूरी है, मैं तो अनुरोध करूँगी कि वह भविष्य में सर्वदा ऐसे लेख देने का कष्ट करें; सचमुच इन पुरुषों ने औरतों के कर्तव्य की तो हद नहीं छोड़ी और आप देवता बन बैठे।

सारे कानून, सारे रिवाज औरतों के ही लिये लिख कर किताबें बना दी हैं। स्त्री परदे में बन्द रहे, ये स्वतन्त्र जहाँ जी चाहे रहें। न इन्हें कानून रोक सकता है न समाज, प्यारी बहिनों क्या हम अपनी दुःखी बहिनों के लिये इतना भी नहीं कर सकने की एक आध लेख ही लिखने का कष्ट करें ताकि यह अपने को स्वामी समझनेवाला पुरुष कुछ तो सोचे, इन पुरुषों ने तो औरतों को लिख लिख कर भरमार कर दी है, बहिन हमें भी अब अपना कर्तव्य समझना चाहिये। एक एक बहिन हमारे राष्ट्र की कितनी दुखी है यह सब सोच कर हमें लिखना जरूरी है। पुरुष स्वतन्त्र है सब कुछ कर सकता है और नारी चार दिवारी के अन्दर तेली के बैल की तरह रात दिन रोती है।

—सुभद्रा कुमारी

——

विद्रोह

लेखक, श्री सत्यदेव वर्मा

अप्रैल की किसी सन्ध्या को—

माँ के मन की चिरसंचित मूर्तिमती आकाँक्षा ने, रेशमी साड़ी का छोटा सा घूँघट डाले बड़ी बड़ी कजरीली आँखों की पलकें नीचे को गिराये, सुहागभरी गोरी गोरी कलाइयों की काली मिश्रित सुनहली छटा बिखेरते हुये, वन्दनवार से सजे द्वार पर खड़ी माँ के पैरों पर अपना मस्तक टेक दिया था। और माँ का हृदय, हर्ष से फूल उठा था!

महीने भर बाद ही गौना हो गया। क्योंकि उसके बाद तीन बरस तक सायत न बनती थी।

माँ बड़ी प्रसन्न थीं कि अब उन पर से घर गृहस्थी का बोझ उतर जायगा। पर...!

उसके ठीक नवें दिन घर के सारे लोगों के मुँह पर यही एक चर्चा थी। माँ चिल्ला चिल्ला कर कह रही थीं—'दिनेसा के तो भाग फूट गये। जिन्दगी रूप देख के ई थोड़े कट जायगी।'

छोटी बहन रेखा से पूँछने पर मालूम हुआ कि दूध में चावल डालने की रस्म में निशा पूरी नहीं उतरी। और इसीलिये इतना हँगामा मचा हुआ था—मैं उठ कर माँ के पास आया, देखा कि उनका मुँह मारे क्रोध के लटका पड़ रहा है। सामने रसोंई के खम्भे की आड़ में निशा खड़ी है, मौन!

मेरे कारण पूँछने पर माँ बोलीं—'राम करे सत्यानास हो जाय उनका—जिन्होंने मुझे धोखा दिया। जब लली को कुछ सिखाया नहीं—तो कह क्यों दिया कि वह सब कुछ जानती है। तब तो जल्दी थी बिटिया ब्याहने की सो झूट-मूट कह दिया कि थाल में की सब चीजें तुम्हारी बहू की बनाई हैं। और बहू है कि खीर तक नहीं बनाय आती।'

मैं विचारा नया ब्यावला...! और फिर माँ से कहता भी क्या!! चुपचाप बाहर चला आया।

उस दिन से माँ ने, सुबह पाँच बजे से, रात के ग्यारह बजे तक रसोंई के कामों के लिये अकेली निशा की नियुक्ति की। मिश्राइन भी छुड़ा दी गई।

मुझे निशा के ऊपर दया आई। विशेषतः जब वह माँ की असह्य झिड़कियाँ भी सिर झुकाये सुन लेती तो मेरे मन में एक हल्के गर्व का अनुभव होता।

जिसने कभी हाथ से तिनका नहीं तोड़ा, वह सुबह से लेकर रात तक जी तोड़ कर काम करती रहती, पर कोई उससे सहानुभूति का एक शब्द तक न कहता। उल्टे—जरा सी गलती पर उसे दिन प्रति दिन अधिक से अधिकतर डाँट खानी पड़ती। इतना होते हुये भी अगाध समुद्र सी शान्त और स्थिर थी निशा।

हाँ! मेरे एक दो बार सहानुभूति जताने पर वह सिसक सिसक कर रोई थी! बस। मेरे लाख लाख पूँछने पर भी उसने इसके बाद कभी मुझसे कुछ नहीं कहा।

चार पाँच महीने इसीतरह बीत गये। अब सावन आया। निशा के भाई राकेश निशा को लिवाने आये। माँ ने दो चार खरी खोटी सुनाईं और भेजने से इन्कार कर दिया। वह लौट गये।

इसके बाद कोई पन्द्रह दिन तक निशा के मुँह पर किसी ने मुस्कान नहीं देखी। हाँ! मेरे सामने आने पर निशा के मुख पर की उदास छाया कृत्रिम हास्य में परिवर्तित हो [illegible]जाती थी और झट मुँह फेर कर वह अञ्चल की कोर [illegible]अपने आँसू पोंछ डालती थी।

मैं सब जानता था—समझता था—पर [illegible]था। माँ के विरुद्ध आवाज उठाने का मुझसे साह[illegible] था। और इसके लिये मैं अपने को निशा के समक्ष गु[illegible]तर अप[illegible]र भी मानता था।

जहाँ तक मुझे याद है—आँसू के सिवा [illegible]के पास न तो कोई फरियाद थी और न शिकायत। म[illegible]वों की चितवन और आँसुओं से ही पारखी चाहे [illegible]ब कुछ समझ ले।

इसी तरह दो वर्ष बीत गये। इस बीच [illegible]निया में न जाने कितने परिवर्तन हुये। पर निशा के [illegible] वह सब एक सा था।

वही दिन भर काम करना, झिड़कि[illegible] सुनना और चुपचाप रो लेना।

पर मेरी दृष्टि में एक परिवर्तन हुआ थ[illegible] इसमें कि अब वह एक कुशल गृहिणी बन गई थी।

पर एक दिन वह समय आते देर नहीं लगी जब कि निशा जैसी अडिग नारी भी डगमगा ही गई।

इतवार का दिन था। दस बज चुके थे। निशा तरकारी छौंक कर नहाने चली गई, इतने में तरकारी जल गई।

माँ ने जो कुछ मुँह में आया निशा को सुना डाला। साथ ही उस[illegible] सात पीढ़ियों का बखान करना भी न भूलीं।

मैं आँगन में बैठा शेव कर रहा था। और मैंने ढाई वर्ष में पहली बार माँ के झिड़कने पर मुँह खोलते सुना। निशा कह रही थी।

'हाथ जोड़ती हूँ माँ जी। मुझे चाहे जो कह लें। अम्मा और बाबू जी के लिये आप क्यों कहती रहती हैं? उनका तो सिर्फ इतना दोष है कि उन्होंने मुझे पैदा किया है। नहीं तो उनके मुँह में कालिख लगने की नौबत ही क्यों आती।'

माँ पहले से दुगनी उबल पड़ीं—'चुप रहती है या नहीं? अम्मा और बाबू जी के गुमान में फूली होय तो लिख दे बाप को चिट्ठी। ले जाय आ के तुझे। अभी मेरा लड़का बुड्ढा नहीं हो गया है। वह बहू लाऊँ कि आँखें फूट जायँ तेरी।'

बात निशा को तीर सी लगी। उसने मेरी ओर हारी हुई दृष्टि से देखा, उसकी आँखों में मेरे चिरपरिचित आँसू थे।

म चुप देख कर वह स्वयं ही बोली। 'माँ जी। इसके लिये ेरी लाश गिरानी होगी।'

अ वह सुबक सुबक कर रो दी।

तब तो फिर रोज कोई न कोई ऐसी बात हो ही जाती है जिस पर निशा कुछ न कुछ कह डालती है, और माँ उबल पड़ती हैं।

जिस , रात को सब कामों से निवृत्त होने के बाद, थकी होते ी वह मेरा मनोरञ्जन किया करती थी, उस समय वह दिन भर की घरेलू बातों पर माँ के कटु व्यवहार की आ ा करती रहती है।

शाम यमानुसार जब खाना खाकर मैं माँ के पास बैठने जाता कुछ देर स्नेह भरी बात चीत करने के बजाय, वे निशा के हर एक बात पर जवाब देने का दुखड़ा सुनाने लगती है।

मैं न निशा का पक्ष ले सकता हूँ, न माँ का?

हाँ! मन ही मन दोनों के मतभेद का कारण ढूँढ़ते हुये मैं स्वयं इस निष्कर्ष पर जा पहुँचता हूँ कि 'नई नवेली दुलहिन', और 'सास का आदर और प्यार' इन दोनों बातों के अर्थों से अपरिचित रह, निरन्तर दो वर्षों तक इस घर में दासी की भाँति रह कर, हर तरह के अन्याय और ज्यादतियाँ सहते सहते ऊब कर यदि निशा एकाएक विद्रोही हो उठी है, तो कुछ अनुचित नहीं!!

'दीदी' पर एक नई विपत्ति

'दीदी' का जन्म संकट काल में हुआ है। विपत्तियों की सीढ़ी पर दृढ़ता पूर्वक कदम रखते हुये ही वह इस उन्नत अवस्था को पहुँची है। परन्तु 'दीदी' के सामने एक और नई विपत्ति आ खड़ी हुई है। भारत सरकार ने आज्ञा दी है कि हम 'दीदी' में अखबारी कागज के सिवा और कोई कागज न लगावें। इसका दो परिणाम होगा। एक तो यह कि 'दीदी' के आवरण पृष्ठ में हम नकली आर्ट पेपर भी न लगा सकेंगे जैसा कि अब तक लगा लेते थे। इससे उसकी रही सही तड़क भड़क मारी जायगी। दूसरे बहुत सी प्रतियाँ हम गैर अखबारी कागज पर छाप लेते थे, उन्हें हम न छाप सकेंगे। हम स्वयं शिमला गये, भारत सरकार का दरवाजा खटखटाया, प्रान्तीय सरकार से प्रार्थनाएँ की, जिले के अधिकारियों को घेरा परन्तु अभी तक कोई सुनाई नहीं हुई। ग्राहकों से निवेदन है कि जैसी भी 'दीदी' निकल रही है, उससे वे सन्तोष करें और हमारी बेबसी का ख्याल करके त्रुटियों के लिये हमें क्षमा करें। यदि सरकार ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली तो 'दीदी' फिर पूर्ववत निकलती रहेगी।

श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह

श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह हिन्दी के श्रेष्ठ कहानी लेखकों में एक हैं। वे कौशिक, सुदर्शन, जैनेन्द्र, यशपाल आदि श्रेष्ठ कहानी लेखकों की भाँति एक ध्येय को लेकर चलने वाले हैं और उन्होंने अपने ध्ययेय के लिए कष्ट सहे हैं। वे हमारी प्रशंसा के पात्र हैं। 'दीदी' के इस अंक में अन्यत्र हम उनकी एक कहानी प्रकाशित कर रहे हैं।

श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए०

एकाङ्की नाटक लिखने में श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए० को कितनी सफलता मिली है, यह हम पाठिकाओं को 'दीदी' के किसी पिछले अंक में बता चुके हैं। इस अंक में अन्यत्र 'चाची' शीर्षक उनका एक और सुन्दर सामाजिक नाटक हम प्रकाशित कर रहे हैं।

विवाहित स्त्री पुरुषों के जानने योग्य !

आपरेशन तथा इन्जेक्शन जरूरी नहीं है !!

अप्राकृतिक रहन-सहन तथा मिथ्या आहार विहार के कारण हमारे देश की नारियाँ अधिकांश ऐसी मिलेंगी जो एक न एक गुप्त रोग से ग्रस्त हो निराश जीवन व्यतीत कर रही हैं। अधिकतर गर्भाशय का मोटा हो जाना तथा उस पर चर्बी आ जाना एक आम रोग हो गया है जो गर्भधारण करने में बाधक होता है तथा अन्य भयङ्कर रोगों की जिससे उतपत्ति भी होती है। ऐसी अवस्था में प्रायः ऑपरेशन कराने से भी बहुत कम रोगियों को सफलता प्राप्त होती है।

यदि आपको ऑपरेशन कराने में असुविधा है या ऑपरेशन की अपेक्षा औषधियों द्वारा कष्ट दूर करने के अधिक पक्ष में है तो शास्त्रोक्त अंगूरों का ताजा रस, अशोक, अर्जुन, दशमूल, त्रिफला तथा अन्य श्रेष्ठ औषधियों से प्रस्तुत—मूँगा जिसका प्रधान अंग है—१५ वर्षों से प्रचलित **गौड़ का नारीसुधा कार्डियल** सेवन करें।

नारीसुधा एक माहवारी से दूसरी माहवारी तक सेवन करने से बिना ऑपरेशन गर्भाशय की चर्बी, उसका मुटापा तथा निपट बांझपन नष्ट हो जाता है और सहज ही गर्भ की स्थिती हो जाती है। जहाँ इन्जेंकशन लिकोरिया (सफेदे का गिरना) रोकने में असफल होते हैं वहाँ कुछ ही खुराकों में यह सदैव के लिये ठीक हो जाता है। कमजोरी से गर्भाशय अपनी जगह से हट जाता है तथा गर्भपात होते रहते हैं। एक बोतल के सेवन से युक्त स्थान पर दृढ़ हो जाता है फिर गर्भपात कभी नहीं होते। मासिक धर्म महीने में दो बार या दो महीने में एक बार की बजाय ठीक समय पर खुल कर हँसते खेलते होने लगते हैं जिससे हिस्टीरिया (बेहोशी) के दौरे पड़ने बन्द हो जाते है। भूख खूब लगती है। खून एक बड़ी संख्या में बनने लगता है। दिल की धड़कन कमर टाँगों का ठहरा हुआ दर्द केवल चौथे दिन दूर हो जाते हैं। जाये का सङ्कट सहन करने तथा बाद की कमजोरी शीघ्र पूरी करने की यह विशेष औषधि है। **नारीसुधा** की २६ खुराकों की एक बोतल का मूल्य पेकिङ्ग वी० पी० व्यय से पृथक तीन रु० पाँच आना है। आवश्यकता होने पर इस मासिक पत्रिका का हवाला देकर

कुमार कुमार एण्ड कं० देहली से मँगाइये।

KUMAR KUMAR & Co. DELHI

युवक और युवतियों से!

यौवन एक तूफ़ानी आंधी है जिसके प्रभाव में बुद्धि और संयम का बांध टूट जाता है और युवक हृदय कामोद्यान में खड़ा हो भरे यौवन को लुटा बैठता है। स्कूलों, कालिजों तथा संगति संसर्ग के दोषों के प्रभाव से कुटेवों द्वारा पुरुषत्व को नष्ट कर आज-कल के युवक अधकचरी दुनियां को बोझ समझ आत्महत्या तक कर लेते हैं। अमीर गरीब सभी घरों में ऐसी घटनायें हुआ करती हैं। कभी कभी वे अविश्वस्त विज्ञापनों से प्रभावित हो उन्हें चुपचाप मंगा सेवन करते और उल्टे सीधे परिणाम पाते हैं। फलतः वे और भी बिगड़ते और उनके शरीर में रोग पुञ्ज घर कर लेते हैं। जवान होते होते उन्हें बुढ़ापा घर दबाता है और वे जीवन की हौंस मन में ही रख कर दुखी जीवन बिताते हैं।

ऐसे दयनीय युवकों को हमारी सम्मति है कि वे जगह-जगह न भटक हमसे परामर्श लें हम उन्हें बिल्कुल उचित परामर्श देंगे। यदि हमें उन गुप्त पत्रों को प्रकाशित करने की आज्ञा होती जो हमें हजारों ऐसे विपद ग्रस्त पुरुषत्वहीन युवकों द्वारा हमारी चिकित्सा से पूर्ण स्वस्थ होने पर हमें धन्यवाद के रूप में लिखे गये हैं तो हम आपको प्रकट कर सकते कि हमारी औषधियों में किस प्रकार की दैवी शक्ति है। यदि आपकी दृष्टि में कोई ऐसा युवक है तो उसे अवश्य हमारा परिचय दीजिये। हमें पूर्ण विश्वास है कि वह पूर्ण स्वस्थ होकर अपने सांसारिक जीवन को सफल बनायेगा।

इसी प्रकार युवतियों को भी हमारा यह आदेश है कि यदि उन्हें कोई गुप्त रोग है, उनके गुप्त अङ्गों में कोई दोष है जिसे वे शर्म के मारे किसी से कह नहीं सकतीं, अथवा जिनसे वे पीड़ित तो रहती हैं पर समझ नहीं सकती, हमें लिख कर हमारी सम्मति लें। हम उन्हें सब प्रकार से पूर्ण स्वस्थ करने का विश्वास दिलाते हैं।

ऐसे युवक युवतियों द्वारा हमें भेजे जाने वाले पत्रों पर 'गुप्त पत्र' लिखा रहना चाहिए। आप विश्वास रखें कि आप एक विश्वस्त तथा सम्मानीय संस्था से पत्र व्यवहार कर रहे हैं। सारा पत्र व्यवहार सर्वथा गुप्त रखा जाता है।

मैनेजर

तेज व बढ़िया सुगन्ध, गहरा रंग और
कम दाम इन सबने मिलकर लिपटन
की व्हाइट लेबुल को बा भर
की सर्वश्रेष्ठ चाय बना र है।